

प्रकाशक का निवेदन

श्रीजवाहरकिरणायत्री का भीमा भाग पाठकों के
हैं। हमें अपार आनंद हो रहा है। आशा है
ही प्रेम और साथ में अभिलाषों, जिनमें प्रेम से
विभक्त हैं।

अमृत किरण का प्रकाशन—क्यों एक वर्ष में भी पढ़ा
गया था, अगर राजनीतिक आशावादी का व्यवसाय
प्रभाव पड़ा है, उसके कारण इसके मैगज़ीन होने में
बढ़ हो गया है। इस बीच अमृत पाठकों को जो
है, उसके लिए हम क्षमाप्रार्थी हैं। यह संभव होगा
हम इसमें पहले प्रकाशित न कर सके।

श्रीजवाहर मंदिर, मद्रास की स्थापना कि
हम २०२० की आर्मीत शुद्धता के को को गई
श्री निमाभावं पुस्तकें श्रीजवाहरकिरणायत्री महारा
को संसार में हैं यह वास्तविक

नं०

विषय

१.	जीजिन मोहनगारो हिं
२.	होवर की बोज
	परमात्मप्राप्ति के सरल साधन
३.	मनु प्रार्थना का प्रयोजन (क)
४.	" " (ख)
५.	प्रार्थना
६.	परमात्मा क्या कह है
७.	नगरकार मंत्र
८.	चन्द्रशेखर की प्रार्थना
९.	पिर का परिहार
१०.	तपः महाराति
११.	संवत्सरी वर्ष
१२.	कहो मे कहो ?
१३.	अष्टशयता
१४.	अष्टशयता (२)
	राम राव्य

श्री जिन मोहनगारो छे !



समुदविजय नुत श्रीनिमीश्वर० ।

यह भगवान् अग्निष्टनेमि की प्रार्थना की गई है। सारा संसार एक मन होकर परमात्मा की जो प्रार्थना करता है, वही प्रार्थना मैं अपने शब्दों में की है। प्रार्थना का विषय इतना व्यापक और मार्बजनिक है कि प्रार्थ्य महापुरुष का नाम चाहे कुछ भी हो और प्रार्थना के शब्द भी कुछ भी हों, उसकी मूल वस्तु समान रूप से सभी की होती है। इस प्रार्थना में कहा गया है:—

‘श्रीजिन मोहनगारो छे, जीवन-प्राप्त हमारो छे ।’

यहां पर यह आशंका की जा सकती है कि क्या भगवान् मोहनगारो हो सकता है? जिसे जैन-धर्म धीतराग कहता है, जो राग, द्वेष और पक्षपात से रहित है, उसे ‘मोहनगारो’ कैसे कहा जा सकता है? जो परमात्मा स्वयं मोह से अनीत है, वह ‘मोहनगारो’ कैसा? जिसे अमूर्तिक और निराकार माना जाता है, वह किम प्रकार और किसे मोहित करना है? इस आशंका पर सगल रीति से यहां प्रकारा डाला जाता है।

लोक-मानस इतना संकीर्ण और अनुदार है कि इनने संसार के अल्पव्य भौतिक पदार्थों की तरह ईश्वर का भी पेटवारा-मा कर रक्खा है। यही कारण है कि ईश्वर के नाम पर भी आपे दिन

‘मोहनगारो’ मानने वाला भक्त कैसा होना चाहिए, यह जानने के लिए सांसारिक बातों पर दृष्टिपात करना होगा ।

जो पुरुष संसार के सब पदार्थों में से केवल धन को ‘मोहनगारो’ मानता है, उसके सामने दूसरी तरफ़ की चाहे लाखों धातें ही जाएँ, लेकिन वह धन के सिवाय और किसी भी बात पर नहीं धिक्केगा । उसे धन ही भन दिखाई देगा । वह सोने में ही सब करा-पात मानेगा । कहेगा—

‘मर्चे गुणाः काञ्चनमाप्तयन्ति ।’

संसार के समस्त सुखों का एक मात्र साधन और विश्व में एकमात्र मागभूत वस्तु धन है, धन ही परब्रह्म है, धन ही धर्म है, धन ही लोक-परलोक है, ऐसा समझने वाला पुरुष धन को ही ‘मोहनगारो’ मानेगा । ऐसा आदमी ईश्वर को मोहनगारो नहीं मान सकता । वह ईश्वर की तरफ़ झँक कर भी नहीं देखेगा । कदाचित् किसी की प्रेरणा से ईश्वर की प्रार्थना करेगा भी तो कंचन के लिए करेगा । वह धन-लाभ को ही ईश्वर की सच्चाई की कसौटी बना लेगा ।

कंचन और कामिनी संसार की दो महाशक्तियाँ हैं । कई लोग ऐसे भी हैं, जिनके लिए कंचन तो इतना ‘मोहनगारा’ नहीं है, किन्तु कामिनी ही उन्हें गुण-निधान, भुव-निधान और आनन्द-निधान जान पड़ती है । कंचन और कामिनी में ही संसार की समस्त शक्तियों का समावेश हो जाता है ।

इन शक्तियों से जिनका अन्तःकरण अभिभूत हो गया है, जिसके इन्द्रिय पर इन्हीं का अधिपत्य जमा लिया है, वह ईश्वर की

तरफ नहीं भाँकेगा। अगर मँगेगा भी तो इसलिए कि ईश्वर जसे कामिनी दे। कदाचिन् कामिनो मिल जाय तो वह ईश्वर से पुत्र-पुत्री परिवार की याचना करेगा। पुत्र-पुत्री मिल जाने पर वह सांसारिक मान-सम्मान के लिए ईश्वर को नमस्कार करेगा। अगर ओ मनुष्य कंचन और कामिनी आदि के लिए ईश्वर की उपासना करेगा, वह जन्मों से किसी को कभी होते ही ईश्वर से विमुख हो जाएगा और कहेगा—ईश्वर है कौन ! अपना उद्योग करना चाहिये, वही काम आता है। ऐसे लोग ईश्वर के भक्त नहीं हो सकते। इनके आगे ईश्वर की बात करना भी निरर्थक-सा हो जाता है।

प्रश्न हो सकता है—परमात्मा के भक्त, परमात्मा को 'मोहन-गारो' मानकर उसके ध्यान में आनन्द मानते हैं, लेकिन कैसे कहा जा सकता है कि यह उनका भ्रम नहीं है ? क्या यह सम्भव नहीं है कि वे भ्रम के कारण ही परमात्मा का भजन करते हैं ? परमात्मा ने ऐसा क्या आकर्षण है—कौन-सी मोहक-शक्ति है कि भक्त-जन परमात्मा के ध्यान बिना, जल के बिना मछली की तरह विकल रहते हैं ? इस प्रश्न का उत्तर यह है कि मछली को जल में क्या आनन्द आता है, यह बात तो मछली ही जानती है, उनी से पूछो । हमारा कोई क्या ज्ञान सकता है ! इसी प्रकार जिन्हें परमात्मा से तत्कृत प्रेम है, वही कहता सकते हैं कि परमात्मा में क्या आकर्षण है, कैसा लौन्दर्य है और कैसी मोहक-शक्ति है ! क्यों उन्हें परमात्मा के ध्यान बिना चैन नहीं पड़ता ! उनके अन्तर में निरन्तर यह ध्वनि घूँटती रहती है—

‘भी जिन मोहनगारो छे, जीवन-प्राप्त हमारो छे ।’

इस प्रकार परमात्मा, भक्त का आधारभूत है । परमात्मा को सभी ध्यान में लिया जा सकता है, जब उसे कंचन-कामिनी से अलिप्त रहना पड़े । जिसमें कामना-वासना नहीं है, वही मोहनगारा होता है । कामना-वासना ने लिये है, वह भीतरांग नहीं है और जो है वह मोहनगारा भी नहीं हो सकता ।

आत्माओं की स्वभाव में ही प्रिय है । एक साथ ही में भक्ति उत्पन्न हो जाती है । साथ (मोवागल) ही जाये हैं । यही मेरे पास आने का मतलब है । त्याग के प्रति भक्ति । अब साथ के

नरक नहीं माँकेगा। अगर माँकेगा भी तो इसलिए कि ईश्वर उसे कामिनी दे। कदाचिन् कल्पना मिल जाय तो वह ईश्वर से पुत्र-प्राप्ति-परिवार की याचना करेगा। पुत्र-पौत्र मिल जाने पर वह सासारिक मान-सम्मान के लिए ईश्वर को नमस्कार करेगा। अगर जो मनुष्य कचन और की मना आदि के लिए ईश्वर की उपासना करेगा, वह जन्म में कमा का कमा होन हो ईश्वर से विमुख हो जायगा और कहेंगा—ईश्वर है जौन ' कपना उद्योग करना चाहिए, बड़ी काम आता है। ऐसे लोग ईश्वर के भक्त नहीं हो सकते। इनके आगे ईश्वर की बात करना तो निरर्थक-भा हो जाता है।

जैसे धन को मोहनगारा मानते बाला उन के मित्राय और हिमी में भलाई नहीं देखता, उन्हीं प्रकार ईश्वर को मोहनगार मानते बाल मनुष्य ईश्वर के मित्राय और किनी में भलाई नहीं देखते। वे लोग ईश्वर को ही मोहनगारा मानते हैं और ईश्वर को ही अपना उपासक समझते हैं।

जल में रहने वाली मछली स्वामी भी है पीती भी है, विषय-भोग भी करती है, मगर कर्ता है भव कुछ जल में रह कर ही। जल में चलता करके उसे मत्स्यमन के विलीन पर रम्य दिया जाय और बढ़िया भोजन खिलाया जाय, तो वह न भोजन स्वापगी, न मत्स्यमन के मुनायम भव का आनन्द हो अनुभव करेगा। उसका ध्यान तो जल में ही लगा रहेगा। परमात्मा के प्रति भक्तों का भावना भी ऐसी ही होता है। भक्त चाहे गृहस्थ हो या साधु, पानी के बिना मछली का तरह परमात्मा के ध्यान के बिना मत्स्य अनुभव नहीं करता। उसका स्वाना-पाना आदि भाग ही व्यवहार परमात्मा के ध्यान के साथ ही होगा परमात्मा के साथ ही बना रहेंगे भावना में अच्छी नहीं लगगा।

उत्पत्ति होती है, तो जो भगवान् पूर्ण बीतराग हैं, उनके ध्यान में कितना आनन्द न आता होगा ? कदाचित् यहां आकर व्याख्यान सुनने वालों पर एक-एक पैसा टैक्स लगा दिया जाय, तो क्या आप लोग आवेंगे ? टैक्स लगा देने पर आप कहेंगे—इन साधुओं को भी हम गृहस्थों के समान ही पैसों की चाह लगी है और जहाँ पैसों की चाह है वहां परमात्मा कैसे हो सकता है ? क्योंकि परमात्मा तो बीतराग है ।

व्याख्यान सुनने के लिए आने वालों पर पैसे का टैक्स न लगाकर छटौं-छटौं भर मिठाई लेकर आने का नियम लागू कर दिया जाय तो सूरामर के लिहाज से मिठाई लेकर आने की बात दूमरी है, लेकिन बीतरागता की भावना में आप न आवेंगे और कहेंगे—इन साधुओं को भी रस-भोग की आवश्यकता है ! मारांरा यह कि आप यहां त्याग देखकर ही आवे हैं । इस प्रकार लगभग सभी आत्माओं को त्याग प्रिय है । फिर यह त्याग भावना क्यों दबी हुई है ? इस प्रश्न का उत्तर यही होगा कि आत्मा कंबल और कामिनी के मोह में फँसा हुआ है । आत्मा रात-दिन मांमारिक बातनाओं में लगा रहता है, इसी कारण उसकी त्याग-भावना दबी हुई है । संसार वासना के बराबरी होने के कारण कई लोग धर्म-सेवन भी वासनाओं की पूर्ति के उद्देश्य से ही करते हैं । कनक और कामिनी के भोग में सुविधा और वृद्धि होने के लिए ही वह धर्म का आचरण करते हैं । ऐसे लोगों का अन्तःकरण वासना की कालिमा में डूबता मलीन हो गया है कि परमात्मा का मन-मोहन रूप उस पर प्रतिबिम्बित नहीं हो सकता ।

यद्यपि मुझ में वह उत्कृष्ट योग शक्ति नहीं है कि मैं आपका ध्यान संसार की ओर से हटाकर ईश्वर में लगा दूँ, लेकिन बड़े-बड़े

मिष्ट मदात्मात्मा ने शास्त्रों में जो बुद्ध कहा है, मुझे उसमें
 इतनी शक्ति दिव्यार्थ देखी है और इसी कारण वही पात्र मैं था
 हुआ हूँ। आप मन मदात्मात्मा के अनुभवपूर्ण कथनही
 ध्यान लगाए। फिर संभव है कि आपका ध्यान संसार की
 से इतकर परमात्मा की ओर लग जाए।

अनुभव, सृष्टि का सादृशाह है। पायसी भाषा की एक वहाव
 ने बहलावा मदा है कि अनुभव सब चीजों का सादृशाह है। इस
 वहाव के अनुसार अनुभव सब प्राणियों का राजा है और सब
 प्राणी उसके छोटे हैं। जब अनुभव का इतना अधिक महाव है,
 अनुभव का सब इतना छोटा है तो आपको विद्वान्ता चाहिए कि
 मारा बर्माव क्या होना चाहिए जो सब में क्या जिना जाता
 , वह किसी में किसी कथने बर्माव में ही। अनुभवों में ही देखते।
 प्राणों के कोई एक होता है, वह का राजा छोटा जिना जाता है।
 अनुभव एक ही होता है। क्या यदि वह सब ही यदि का अनु-
 वाह में से कोई एक सब होता है। नहीं। जिसके दिव्य में
 प्रकाश की लक्ष्मी है, जो दुष्ट को दुष्ट और पापी को पापी
 मिष्ट कर दिया होता है, इस शक्ति के कारण जो कल्याण की
 कारणों से, जिस सबता है का कल्याण से दुष्ट कर गया है,
 पापी का जो है सबता है का कल्याण से दुष्ट कर गया है, वह
 सब कल्याण है। इस प्रकार सब करने के लिए ही सब
 होता है।

अनुभव सब है कि सब, उनका का कल्याण सब है, उनका
 के कल्याण सब है, उनका का कल्याण सब है, उनका
 कल्याण सब है, उनका का कल्याण सब है, उनका
 के कल्याण सब है, उनका का कल्याण सब है, उनका

जगह हरियाली फैल जाती है, असंख्य कीड़े-मकोड़े पैदा हो जाते हैं, इस कारण विहार करने में कठिनाई होती है और विहार करने से अहिंसा धर्म का दूध आदर्श नहीं पल सकता। अतएव वर्षा में उत्पन्न होने वाले जीवों की रक्षा के उद्देश्य से मैं आशा देता हूँ कि चार महीने एक स्थान पर निवास करना और प्रतिसंलीनता धारण करना। प्रतिसंलीनता धारण करने का अर्थ है—मन, बचन, काय को सदा को अपेक्षा अधिक रोक कर तप-संयम अधिक करना।

इस प्रकार चार मास तक एक स्थान पर रहना भगवान् की आज्ञा के अनुसार साधु का कर्त्तव्य है। अगर कोई साधु यह सोचता है कि यहां चार मास रहना ही है और यहां की मिठाई बड़ी स्वादिष्ट होती है तथा भक्त लोग खूब 'घण्टी खमा' करते हैं, तो मिठाई खाकर 'घण्टीखमा' की मौज क्यों न लूट लें ? और ऐसा सोच कर वह अगर चातुर्मास को खाने-पीने और मान-बढ़ाई का साधन बना लेता है तो क्या वह भगवान् की आज्ञा का और अपने कर्त्तव्य का पालन करता है ? कदापि नहीं।

जो साधु चातुर्मास को जीवों की रक्षा एवं अधिक तप-संयम करने का अवसर न मान कर, जिह्वा-रुप्ति या मान-बढ़ाई का अवसर समझता है, भगवान् उसे पाप-भ्रमण कहते हैं। चातुर्मास के सिवाय शेष काल में जो तप-संयम किया जा सकता था, उसे चातुर्मास में एक स्थान पर रहकर करना चाहिए। चातुर्मास में अधिक से अधिक धर्म-जागृति करनी चाहिए और जिन प्राणियों की दया के खातिर एक स्थान में रहने की भगवान् ने आज्ञा दी है, उन प्राणियों की दया संसार में फैलानी चाहिए।

रसोई का ईंधन अच्छी तरह देखे-भाले बिना काम में नहीं लाना चाहिये ।

गृहस्थ होने के कारण यद्यपि आप सम्पूर्ण अहिंसा का पालन नहीं कर सकते, तथापि आपको यह स्मरण रखना चाहिए कि यतना के साथ कार्य करने से गृहस्थ भी बहुत-से पापों से बच सकता है । यहाँ गृहस्थ के कर्त्तव्यों पर कुछ प्रकारा डाला जाता है । इसके अनुसार चलने से आप परमात्मा के भक्त कहलाएंगे और उस 'मोहन-गारो' के समीप पहुँचेंगे ।

अभी कुछ दिनों पहले तक गृहस्थ बहिनें अपने हाथ से आटा पीसती थीं । घनाट्ट और निर्घन का इस विषय मशीन का आटा में कोई भेद नहीं था । शरीर के लिए किसी न किसी प्रकार के शारीरिक व्यायाम की जरूरत होती ही है । नीरोग रहने के लिए यह अत्यावश्यक है । अपने हाथ से आटा पीसने में बहिनों का अच्छा व्यायाम होजाता था और वे कई प्रकार के रोगों से बची रहती थीं । परन्तु आजकल हाथ की बक्की परों से उठ गई और उसका स्थान पनचक्की ने ग्रहण कर लिया है । बहिनें आलसी हो गई हैं । वे अपने हाथ से काम करने में कुछ मानती हैं और धीरे-धीरे बहूपन का भाव भी उन्हें ऐसा करने के लिए रोकने लगा है । इसका एक परिणाम तो प्रत्यक्ष दिखाई देता है कि बहिनों ने अपना स्वास्थ्य खो दिया है । आज अधिकांश दाइयों निर्दल निम्नत्व और तरह-तरह के रोगों से ग्रस्त हैं । प्रसव के समय अनेक बहिनों को भारी कष्ट उठाना पड़ता है और बच्चों को तो प्राणों में भी हाथ भी बैठना पड़ता है । इसका एक प्रधान कारण आलस्यमय जीवन है, जिसके दशैतल वे

गई हरिपातो कैल जावो है, असंख्य कोड़े-मकोड़े पैदा हो जाते हैं, न कारण विहार करने में कठिनाई होती है और विहार करने से दिना धर्म का वह आदर्य नहीं पल सकता। अतएव बर्षा में लग्न होने वाले जीवों की रक्षा के उद्देश्य से मैं आशा देता हूँ कि वे अपने एक स्थान पर निवास करना और प्रतिसंलीनता धारण करना। प्रतिसंलीनता धारण करने का अर्थ है—मन, बचन, काय। सदा ही अपने अधिक शोक कर तप-संयम अधिक करना।

इस प्रकार चार मान एक एक स्थान पर रहना भगवान की आज्ञा के अनुसार साधु का कर्त्तव्य है। अगर कोई साधु यह सोचता है कि यहाँ चार मान रहना ही है और यहाँ की मिटाई बढ़ी बरिष्ट होती है तथा अष्ट लोग खुद 'पली खमा' करते हैं, तो मिटाई खाकर 'पलीखमा' की मौज क्यों न लूट लें ? और ऐसा सोच कर वह अगर वातुर्मास को गाने-बाने और मान-बढ़ाई का साधन बना लेता है तो क्या वह भगवान की आज्ञा का और अपने कर्त्तव्य का पालन करता है ? कहानि नहीं।

जो साधु वातुर्मास की आँखों की रक्षा एवं अधिक तप-संयम करने का अवसर न मान कर, जिह्वा-दुर्नि या मान बढ़ाई का अवसर समझता है, भगवान् उसे पाप-भक्त कहते हैं। वातुर्मास के निवास शेष चार में जो तप-संयम किए जा सकता था, उसे वातुर्मास में एक स्थान पर रहकर करना चाहिए। वातुर्मास में अरुण में साँझ तक जागृत रहना चाहिए। अतः 'तप-संयम' का अर्थ यह नहीं है कि एक स्थान में रहने का भगवान् ने आज्ञा दी है, बल्कि साधु की रक्षा मन्त्र में दीयाना चाहिए।

सोई का ईंधन अच्छी तरह देखे-भाले बिना काम में नहीं लाना चाहिये ।

गृहस्थ होने के कारण यद्यपि आप सम्पूर्ण अहिंसा का पालन कर सकते, तथापि आपको यह स्मरण रखना चाहिए कि यतना साथ कार्य करने से गृहस्थ भी बहुत-से पापों से बच सकता है । गृहस्थ के कर्त्तव्यों पर कुछ प्रकाश डाला जाता है । इसके अनुसार चलने से आप परमात्मा के भक्त कहलाएंगे और उस 'मोहन-ती' के समीप पहुंचेंगे ।

अभी कुछ दिनों पहले तक गृहस्थ बहिनें अपने हाथ से आटा पीसती थीं । धनाढ्य और निर्धन का इस विषय में कोई भेद नहीं था । शरीर के लिए किसी न किसी प्रकार के शारीरिक व्यायाम जरूरत होती ही है । नीरोग रहने के लिए यह अत्यावश्यक है । हाथ से आटा पीसने में बहिनों का अच्छा व्यायाम होजाता है । वे कई प्रकार के रोगों से बची रहती थीं । परन्तु आजकल ची चक्की घरों से उठ गई और उसका स्थान पनचक्की ने कर लिया है । बहिनें आलसी हो गई हैं । वे अपने हाथ से करने में कष्ट मानती हैं और धीरे-धीरे षडृप्ति का भाव भी आने के लिए गोकने लगा है । इसका एक परिणाम तो यह दिख रहा है कि बहिनो ने अपना स्वास्थ्य खो दिया है । अधिकांश बाइयाँ निर्दल निःसन्ध और तरह तरह के रोगों में प्रसव के समय अनेक बहिनो को भारी कष्ट उठाना पड़ना पड़ियों को तो प्राणों में भी हाथ धो बैठना पड़ना है । एक प्रधान कारण आलस्यमय जीवन है, जिसकी बदौलत

आप हाक्टरों की गाय लेंगे तो वह आपको बतलाएंगे कि पनचक्की का आटा हानिकारक है।

इसके सिवाय हाथ की चक्की में अल्प-आरम्भ से काम चलता था, लेकिन पनचक्की से मश-आरम्भ होता है।

पनचक्की से गृहस्थ-जीवन की एक स्वतन्त्रता नष्ट हो गई और परतन्त्रता पैदा हो गई है।

गर्मी और धर्पा के कारण आटे में भी कीड़े पड़ जाते हैं, जल में भी कीड़े पड़ जाते हैं, और ईंधन में भी।
बिना छना पानी लोग धर्म-ध्यान तो करते हैं, परन्तु इन जीवों की रक्षा करने में और हिंसा के घोर पाप से बचने में न मालूम क्यों आलस्य करते हैं? बड़े बड़े मटकों में भरा हुआ पानी कई दिनों तक खाली नहीं होता। पहले के भरे हुए पानी में दूसरा पानी डालते रहते हैं। कदाचिन् पहले का पानी आरम्भ में छान कर भरा गया हो, तो भी उसमें जीव उत्पन्न हो जाते हैं। एक बार छना हुआ जल सदा के लिए छना हुआ नहीं रहता। अतएव ऊपर से नया पानी डाल देने से वह भी बिना छना हो जाता है। इसे व्यवहार में लाना हिंसा का कारण है। अगर जल छानने की यतना मर्यादा पूर्वक की जाय, तो अहिंसा-धर्म का भी पालन और स्वास्थ्य की भी रक्षा हो। आप सामायिक धर्मध्यान तो करते हैं, पर कभी इस पर भी ध्यान देंगे कि आपके घर में पानी छानने के कपड़े की क्या दशा है?

पहनने-छोड़ने के कपड़ों की प्रविलेखना करते हैं, परन्तु पानी छानने के कपड़े की ओर ध्यान ही नहीं जाता। मेठ-मेठानी की

रात्रि में तां भोजन नहीं कर पावे और रात्रि में ही भोजन मिलती है।

रात्रि-भोजन की बुराइयों इतनी स्थूल हैं कि उन्हें कभी-कभी नमाने की आवश्यकता नहीं जान पड़ती। रात्रि में चढ़े बिस्तर से छोड़े आ जाते हैं और वह भोजन ने गिर जाते हैं। अगर भोजन छोड़े में भोजन किया जाय, तो आकर गिरने वाले जंक-ऑ का पता लग ही नहीं सकता। इस प्रकार होने पर भोजन को खाने से बच सकते। रात्रि-भोजन के प्रत्यक्ष प्रभाव होने वाले होने के कारण कराने हुए आचार्य हेनचन्द्र ने कहा है—

मेघां निषीलिका हन्ति, नृकां कुपयन्ति ।
कुरुते मक्षिका वान्ति, कुटुराणां च कोलिकाः ॥
कण्टको दारुत्वरुहं च, वितनोति मलमयान् ।
न्यञ्जनान्तरनिषवित्वातुं, विध्यते वृद्धिः ॥
लम्ब गले कालः, स्वरमहाय जायते ।
यादयो दृष्टदोषाः सर्वेषां निरिन्मोदने ॥

—योगशास्त्र, दुर्गम प्रकाराः ।

—रात्रि में विरोध प्रकाशान होने के कारण अगर के साथ पेट में चली जाय, तो वह नेचराळि (बुद्धि) है। जू गिर जाय तो जजोर नामक भयङ्कर रोग से बचन होता है। कोलिका (जीव विरोध) से कोट या लकड़ी की घोंत भोजन के साथ नाने में का

आप डाक्टरों को राय लेंगे तो वह आपको बतलाएंगे कि पनचक्की का आटा हानिकारक है।

इसके सिवाय हाथ की चक्की में अल्प-आरम्भ से काम चलता था, लेकिन पनचक्की में मदा-आरम्भ होना है।

पनचक्की से गदस्थ-जीवन की एक स्वतन्त्रता नष्ट हो गई और परतन्त्रता पैदा हो गई है।

गर्मी और वर्षा के कारण आटे में भी कीड़े पड़ जाते हैं, जल में भी कीड़े पड़ जाते हैं, और ईंधन में भी।
 बिना छाना पानी लोग धर्म-ध्यान तो करते हैं, परन्तु इन तीनों की रक्षा करने में और हिंसा के घोर पाप से बचने में न मालूम क्यों आलस्य करते हैं ? बड़े बड़े मठों में भरा हुआ पानी कई दिनों तक खाली नहीं होता। पहले के भरे हुए पानी में दूसरा पानी ढालते रहते हैं। कदाचित् पहले का पानी आरम्भ में छान कर भरा गया हो, तो भी उसमें जीव उत्पन्न हो जाते हैं। एक बार छाना हुआ जल सदा के लिए छाना हुआ नहीं रहता। अतएव ऊपर से नया पानी ढाल देने से वह भी बिना छाना होजाता है। उसे व्यवहार में लाना हिंसा का कारण है। अगर जल छानने की यत्न मर्यादा पूर्वक की जाय, तो अहिंसा-धर्म का भी पालन हो और स्वास्थ्य की भी रक्षा हो। आप नामायिक धर्मध्यान तो करते हैं, पर कभी इस पर भी ध्यान देते हैं कि आपके घर में पानी छानने के कपड़े की क्या दशा है ?

पहनने-ओढ़ने के कपड़ों की प्रतिलेखना करते हैं, परन्तु पानी छानने के कपड़े की ओर ध्यान हो नहीं जाता। मेठ-मेठानी की

बार पहर के दिन में तो भोजन नहीं कर पाते और रात्रि में ही उन्हें सुनत मिलती है।

रात्रि-भोजन की सुराहियों इतनी स्थूल हैं कि उन्हें अधिक समझाने की आवश्यकता नहीं जान पड़ती। रात्रि में पाए जितना प्रकारा किया जाय, उधेगा रहता ही है। दलिक प्रकारा की देखकर इतने कीड़े आ जाते हैं और वह भोजन में गिर जाते हैं। अगर हम उधेरे में भोजन किया जाय, तो आकर गिरने वाले जीवों का पता लग ही नहीं सकता। इस प्रकार दोनों अधरथाओं रात्रि-भोजन करने वाले अधर्य भरण और दित्त के पाप से बच सकते। रात्रि-भोजन के प्रत्यक्ष प्रतीत होने वाले दोषों का निवारात हुए आपादं हेमचन्द्र ने करा है—

मंधा रिपोलिता इति, मूत्रा पुपांशुलोदरम् ।
 पुरते मक्षिका वान्ति, पुच्छेगं च कोलिता ॥
 बटवो दास्यन्ते च, बिलोति गलप्यमानम् ।
 पचन्जनान्तिनिवतिवराहः, बिभ्रति दृष्टिकः ॥
 लेलमथ गले बालः, स्वरभङ्गाय जायते ।
 चारुो दृष्टोपाः सर्वेषां निरिभोजने ॥

—देवराज, इति प्रकाशः ।

—रात्रि में विशेष प्रकारा न होने के कारण अगर हम रात्रि में भोजन करें, तो बहुत अधिक कीड़े आ जाते हैं। रात्रि में भोजन करने वाले जीवों का पता लग ही नहीं सकता। इस प्रकार दोनों अधरथाओं रात्रि-भोजन करने वाले अधर्य भरण और दित्त के पाप से बच सकते। रात्रि-भोजन के प्रत्यक्ष प्रतीत होने वाले दोषों का निवारात हुए आपादं हेमचन्द्र ने करा है—

पेट पुला और मूली मारी,
बैद और जूरी करी नयारी ।

नहि जाने बारी ॥

एक महीने में मुई नीकली मागर में भाई ॥ १० ॥

आप इस कविता की शान्तिवस्तुतियों पर ध्यान न देकर हमके भावों पर ध्यान दीजिए। रात्रि-भोजन में होने वाली हानियों के दृष्टांतरण पहले के भी हैं और आज भी अनेक मुने जाने हैं। मागर के हकीम ने रोगों पर दिक्कत पलाई, लेकिन रात्रि का भोजन नहीं खाया। नवीना यह दूखा कि उसे अपनी स्त्री में हाथ धोना पड़ा। आजकल के वैद्यभिर भी रात्रि-भोजन को राहनी भोजन कहते हैं। रात्रि में पानी भी खाना-पीना छोड़ देते हैं। पत्नियों ने भी इस समय जाने जाने बड़े भी रात में नहीं खाते। हाँ, बमर्गदह रात्रि को खाते हैं, परन्तु क्या आप उन्हें अपना समझते हैं? आप क्या अनुसरण करना समझ करते हैं?

साक्षात् यह है कि रात्रि-भोजन कविता और खान्द्व दोनों को नाशक है। यह सब भाइयों और बहिनो को धर्म की भाव है। रात्रि को खाकर रात्रि भोजन का स्वाद करना

यह सब है। यह सब भाइयों और बहिनो को धर्म की भाव है। रात्रि को खाकर रात्रि भोजन का स्वाद करना

जो बार के बाद उदर गई और इसी के उदर में सभी रीने ।
जाने प्राणों में हाथ भी बैठे ।

बोह (विह्वल) की ठगुलनी ने दिन भर दहादती का ।
बिना और रात की दहाहार जाने लगे । ठगुलनी ने केवल य
ही काम लाया था कि भयंकर रोना हो गया । अनेक प्रकार ।
विरिन्ता करने पर भी वह न रुक सकी ।

अनादि दिवनादे आने रधिरनुकरने ।

अनं मांसमनं प्रोक्तं माहंरहेपनहर्षिता ॥

यहां मूर्ख दुखने के कारण एक ही चीज और पानी की रक्ति
के समान बगलाया गया है । वह पाए कासंशरिक भाग हो, जि
भी बिना छोटे कपड़े में शक्ति की भोजन-मान का त्याग बगलाया
गया है । अन्तर शक्ति-भोजन के अनेक दिव रीने का विचार करके
आज हमका गला बने ।

यहां जानते दिन बर्ताने की और बारका गान काचर्चिन
बिना गान है, वह अनेक छंद कदुलने जाने, इतिह अनेक अनुप
बगलाये बार क विन कादाराव है । अनेक रीने की मातुली का
बगला है की । हम इस बगला का पालन करते हैं, माता बगला का
पालन करते बार की का पालन करते हैं । का अनुप है । अनु
बगला - का पालन करते हैं । अनेक अनुप की पालन करते हैं । अनेक
पालन करते हैं । अनेक पालन करते हैं । अनेक पालन करते हैं ।

पिहार से डरते हैं, पर अविहार के काम नहीं करते। 'पशु' कहलाने में अपना अपमान मानते हैं, मगर पशुओं के काम छोड़ना नहीं चाहते।

अगर पशु और मनुष्य की तुलना की जाय तो मालूम होगा कि विभिन्न पशुओं की अपेक्षा मनुष्य कई बातों में गया-सीता है। सर्वप्रथम काम भोग को ही ले लेंजिये। पशु की काम-वासना कितनी नर्यादित है? की-जानि के पशु गर्भ धारण के अतिरिक्त कभी काम-मेवन नहीं करते। नर-जातीय पशु भी शेष समय में उनके पास नहीं जाते। मगर मनुष्य विषय-वासना का कीड़ा बना हुआ है। उसने मनमत्त नर्यादाओं को लांघ कर घोर वच्छुद्धता धारण की है। इसके लिए वर्ष के तीन सौ पैंसठ दिन एक मरीखे हैं। इस विषय में उसे समय-बसमय और गन्दागन्ध का कोई विवेक नहीं है।

रखे-भुखे और रुखे-सूखे रोटी के कतिपय टुकड़ों पर निर्वाह करके भी अपने स्वामी की भक्ति और रक्षा करने वाले कुत्ते की तुलना किस मनुष्य के साथ की जाय? कुत्ता अपने स्वामी की राख-दिन रक्षा करता है, जब कि मनुष्य अपने स्वामी को—आजीविता देने वाले को—भी धोखा देने में नहीं चूकता।

गाय और मँत आदि दुधारु पशु पान और खल जैसी चीजें खाकर उनके बढ़ते मनुष्य को अपने हृदय का रस—दूध देते हैं, जिनके बिना मनुष्य-समाज का काम चलना कठिन है।

निइ बहुत ही भयकर प्रारो सनम्ता जावा है, मगर क्या वह अपने मजारीय सिंह को मारकर खा जाता है? नहीं। लेकिन

जिन में महायक बनना ही क्या असाधारण युद्ध के धनी
 होभा देता है ? क्या इमीलिए मनुष्य, पशुओं से भेष्ट
 है ? यह सब देखकर आपसो क्या यह नहीं मालूम होता
 पशुता के जितने अंश हैं, उनमें वहाँ अधिक मनुष्य में

मनुष्यत्व की भेष्टता इन कारण नहीं है कि वह अपनी
 से पुरे पानों में पशुओं को भी मान कर दे, वरन् वह
 राजा इसलिए है कि सद्गुणों को धारण करे, धर्म
 स्वयं जवित रहते हुए दूसरों के जीवन में महायक
 जीवन का पूर्ण रूप में त्याग करे, आदर्श मनुष्य
 स्वयं की ओर समझ रहे हैं। यह मनुष्य का कर्तव्य
 का अधिकार है।

के सामने अपना विवाद करते हैं। पंथों के समझ
 ता है और पंथों विरुद्ध है। पुरुष, स्त्री का हाथ
 धन देता है। इन प्रकार विवाद करके पुरुष
 उसे कोई विचार नहीं देता। जगत् स्त्री या पुरुष
 ही प्रकृति भग्न करके पर-पुरुष या पर-स्त्री से
 जो वह क्या विचार का पात्र नहीं होगा ? मनों
 टोने हैं और हमें विचार देते हैं।

और दबोल वहाँ हैं जो अपने-अपने अधिकार
 महा-महा-न करके बंजर हैं के दुःख
 मेलन में वह वह महा-न के उद्वेग करते
 न के महा-न महा-न करते हैं। अ-ब-न का

आन्दोलन में बढ़ रहा है, इसका कारण गुजरात के इतिहास में मौजूद है और गुजराती लोग बड़े प्रेम में बसे गाते और पढ़ते हैं।

मरिममय सुकरान नामक जनपद में पाटन एक विख्यात नगर था भी मौजूद है, जहाँ आचार्य हेमचन्द्र का शिष्य कुमारपाल राजा हो चुका है। इसी पाटन में भिदरगज मोलंकी नामक एक राजा था। भिदरगज इतिहास-प्रसिद्ध राजा है। वह बड़ा ही बली, लाइसी और बला-पुर्ण राजा था। नगर वनमें एक बड़ा दोष भी था। वह यह कि वह लम्पट था। इसकी लम्पटना ने उसे कलंकिन पर दिया था।

[illegible]

उमने मिहना की भाँति कड़क कर उत्तर दिया—‘गजा, तू मत्ता मर मे वञ्चित हो रहा है। तुझे तनिक भी विवेक नहीं रहा। मैं अपने पतिदेव की रक्षा नहीं कर सकी, मगर याद रखना, शीघ्र ही एक दिन आयागा जब तू और अपनी रक्षा करने में असमर्थ जायगा। तेरा उस नृशमता और लज्जाटन की कहानी इतिहास काले पत्थरों में लिखी जायगी। तब यह गारवागथा तेरी मन्ता और दूसरे लोग भृश और लज्जा के साथ पढ़ेंगे और अन्ततः तू एक तेरे नाम पर धुंकेन गेहे। गुनगान के कलक! आज जा पा कर ले। मर पुत्र का घात करके भी तू मंगल वर्म नदी छीन सकता मेरे प्राण लेने का सामर्थ्य तुझ में है, मगर मेरा धर्म लेने का सामर्थ्य इन्द्र में भी नहीं है।’ अपने पति और पुत्र की रक्षा कर वाली मैं कौन हूँ? धर्म ही अखिल ब्रह्माण्ड की रक्षा करता है उम्मी नमं की मैं रक्षा करूँगी। तेरा कोई भी अत्याचार, कोई भी पैशाचिकता मुझे धर्म से ज्युत न कर सकेगी। तब प्रयत्न विफल होगा। समझ रखना, कर्मदेवी साधारण धातु की बनी थी नहीं है

अन्त में मिथुराज ने कर्मदेवी के पुत्र को भी काट डाला, लेकिन वह मरता अपने अन्धश्रुति से नहीं दिगी, सो नहीं ही दिगी। अपने शत्रुओं के हतय में केपकेरी पैदा करने वाला प्रतापी मिथुराज एक अवस्था के आगे पराजित हो गया। कर्मदेवी दुनिया की दृष्टि में अचला ही थी, मगर उसमें मानव का जो असाधारण सामर्थ्य था, उसके कारण वह मरना ही नहीं, बरन प्रबला हो थी। ऐसी दवियों में मर का अन्त न हो।

जब तक कि हमें ही नहीं मरने की वृत्ति है, तब तक कि हमें ही नहीं मरने की वृत्ति है—

समझते हैं या नहीं ? अगर कामान्ध पुरुष कैसे समझ सकते हैं ! लेकिन आँखों की यह नीरव भाषा पढ़ने में स्त्रियों कभी भूल नहीं करती । वह घट से ताड़ लेती है । फिर जसमा जैसी विचक्षण स्त्री के लिए तो यह समझना कोई बड़ी बात नहीं थी । सिद्धराज जैसे ही जसमा की ओर बढ़ा कि जसमा समझ गई । वह जरा दूर हट गई ।

सिद्धराज ने जसमा से कहा—‘क्या तुम्हारा यह सुकुमार शरीर मिट्टी ठठाने के लिए है जसमा ! जिस शरीर की रचना करने में विधाना ने अपना सारा चातुर्य खर्च कर दिया हो, उसका यह दुरुपयोग देखकर मुझे दया आती है । तुम्हारी सुकुमारता बहती है, तुम मिट्टी ठठाने के लिए नहीं जन्मी हो । मैं आज से तुम्हारे लिए यह सुविधा किए देता हूँ कि तुम तालाब की पाल पर बैठी रहा करो और अपने बच्चे को पाला करो । मिट्टी ठठाने के लिए और बह-सेरी हैं !’

माधारण स्त्री होती तो वह कदाचित् राजा की इन मूलानुज्ञाओं में फँस जाती । मगर जसमा का दिल और दिमाग और ही तरह का था । वह राजा की इन कृपा का भेद समझ गई । तबन्नि ब्रह्मने विनम्रता पूर्वक हाथ जोड़ कर कहा—‘आप अमरदाता हैं । आपने मुझ पर जो दया दिखाई, उसके लिए आभारी हूँ, लेकिन मेरा स्वभाव दूसरी ही तरह का है । मैं मिहनत-मजदूरी करके ही अपना पेट भरना अच्छा समझती हूँ । मेरी दृष्टि में बिना निन्दित हिन्दे का पुरा है ।’

अक्सर लोग परिश्रम से बचना चाहते हैं । निन्दित न करती पड़े, मगर भर पेट भोजन और आमोद प्रमोद के साधन निन्दित न करे

तो बस, धरती पर ही उन्हें स्वर्ग दिखाई देने लगता है। पुरुष का प्रताप ही क्या जो बिना मिहनत किये खाना न मिला ! अपनी कमियाँ का अन्न खाकर जीने का तत्त्व बहुत कम लोगों ने सीखा है। जसमा ऐसे ही व्यक्तियों में थी।

जसमा ने कहा—'मैं बिना मिहनत किये, बैठी-बैठी खाना पसन्द नहीं करती। बैठी-बैठी खाऊँ तो अनेक रोग हो जाएँ और फिर इलाज के लिए पैसा फीस माँगे तो मैं गरीब सत्रदूरिन कहीं से दूँ।'

डिस्टीरिया का रोग, जिसे अरिखिन स्त्रियों भेडा या बेस कहती हैं और जिसके होने पर सींग दाता आदि स्थानों पर रोंको ले जाया जाता है, बैठे रहने—परिधम न करने से होता है। यह रोग प्रायः पनिक स्त्रियों को ही होता है, गरीब स्त्रियों को नहीं। गरीब स्त्रियाँ श्मशान के पान रहने पर भी इस रोग का शिकार मर्दी बनती और अमीर स्त्रियों को बन्द घर में बैठे भी यह रोग हो जाता है। अमली बात यह है कि जो स्त्रियाँ आनसी होती हैं, परिधम नहीं करती, कहीं को यह भयानक बीमारी घेरनी है। अगर अरिजा और कुमस्थारों के कारण लोग सामुदायिकता को न समझ कर देवी-देवता की मन्त्रन-पूजा करते हैं और डाक्टरों का निशुक्राने-बुझाने परेशान हो जाते हैं। भोवा लोगों को, जो भैरवजी का प्रसाद उधार जाते हैं, कोई बीमारी नहीं होती; लेकिन भैरवजी का मानने वाले अगर उन्हें चढ़ावा न चढ़ावें तो अपनी हानि समझें हैं; यह सब ध्रम की बातें हैं। सामुदायिक धान यह है कि परिधम करने में ही डिस्टीरिया की बीमारी होती है।

जसमा पढ़ी-लिखी न होने पर भी परिधम का मुख्य समझ गई थी। उसने मिहिराज से कहा—'मैं काम करके खाती हूँ। मेरा कष्ट अच्छी तरह बस रहा है। मेरे सम्बन्ध में आप चिन्ता न करें।'।

की जिन मोहनगारो हे]

[
उत्तमा का यह उत्तर सुन कर सिद्धराज ने सोचा—'उत्त
माधारण की नहीं मान्य होती। सौन्दर्य-सम्पत्ति के साथ उत्त
मता की विभूति भी है।'

सिद्धराज प्रकट में बोला—'उत्तमा, मैं कहता हूँ, तू जङ्गल में
भटकने और सुरह से शान तक मजदूरी करने के लिए नहीं है। तू
अपने सौन्दर्य को, अपनी सुकुमारता को और अपने असली
स्वरूप को नहीं समझती। क्या तेरा यह फूल-सा कोमल शरीर मिट्टी
टोने के लिए है? तू मेरे शहर में चले। पाटन शहर देखकर ही तू
घबकन रह जायगी। पाटन इन पृथ्वी पर स्वर्ग है। शहर में तुम्हें
सच्ची आराम की जगह दिला दूंगा।'

उत्तमा समझ गई कि इनने पहले जो प्रलोभन दिया था, उसने
न फैलती देखा अब और बड़े प्रलोभन में फँसना चाहता है। मत्तक
से विचार करने वाले के लिए गवा की बात ठीक हो सकती है।
मत्तक कारण दुंदुता है, लेकिन हृदय बुद्ध और ही कहता है।
आधुनिक शिक्षा ने मत्तक का विकास पाई किया हो, मगर
हृदय के विचारों को नष्टपाय कर दिया है।

राजा की बात सुनकर उत्तमा बोली—'कहाँ तो प्रकृति की
स्वच्छन्द सीता का धाम, स्वभाव में सुन्दर, जानन्दरायक जङ्गल
और कहीं निगोहा नगर जहाँ गन्दगी की सीमा नहीं।' जिस प्रकार
पानी के गले कोड़े-मकोड़े निकल कर रोगने हैं, वही प्रकार
नगर में मनुष्य चिरते हैं जगन में मगल रहता है जगन
में स्वच्छ व सु और 'वस्तुन ध्यान रहने में कहाँ' जगन की
मेरी नगर जगन होना तो बड़े-बड़े मठों का नगर छोड़कर उत्तम

राजा जमना का उत्तर सुन पशोपेश में पड़ गया । उसने सोचा—जमना इस पन्दे में भी नहीं फँसी । ऊध उसने एक नया तरीका खिन्निदार किया ।

राजा ने कहा—'जमना' जान पड़ता है, तेरी बुद्धि बिगड़ी हुई है । गेंवारो का दिमाग हो उल्टा होता है । जड़े सोभी दान भी उभटी मानूम होती है । गेंवारो के साथ रहनी-रहता तू भी गेंवार हो गई है । इसी कारण अधिक अनुप्यो की देखकर तुझे पचगाहट होती है । अधिक अनुप्यो में रहना बड़े भाग्य में मिलता है । शहरों का नाम बहुत खप्यो-नी होता है । तू मगजु की हलकी है । बन्दर क्या जाने खदमय का खाद ? तू जंगल की रहन बाभी, शहरों के गले क्या समझ सकती है ? जंगल जंगली जानवरों के बसने की जगह है । तेरे साथक तो दाटन जंभा गहर हो है तू पल । शहर में रहने के लिए तुझे बहुत खदमय खान देना होगा ।

उत्तर में जलमा ने कहा—'ऊध मरी 'दटाईं हो समझ ते' कि मैं खदमयो उत्तर देन का माहम कर रही हूँ । लेकिन मैं दान की सब दान यह है कि, जैसे खदमयो जंगल 'प्रद हो' वैसे ही मुझे जंगल दिया है । शहरों के खदमय जंगल जैसे मिले मन व देने हैं । जंगल व नहीं होता ।

उत्तर में राजा ने कहा—'ऊध मरी 'दटाईं हो समझ ते' कि मैं खदमयो उत्तर देन का माहम कर रही हूँ । लेकिन मैं दान की सब दान यह है कि, जैसे खदमयो जंगल 'प्रद हो' वैसे ही मुझे जंगल दिया है । शहरों के खदमय जंगल जैसे मिले मन व देने हैं । जंगल व नहीं होता ।

बह भले ही बगीचे में जाय, राजमहल में निवास करे । मुझे बाग वा महल की आवश्यकता नहीं । प्राकृतिक जंगल को छोड़ कर नकली बगीचे में रहना बौन पसन्द करेगा ? मैं असली जंगल में ही भली हूँ ।

गजा—'तनी खिद ! मैं गुजरात का राजा हूँ और तू एक मामूली मजूरिन है । मेरे नामने इस प्रकार की बातें करते तुझे शर्म मालूम नहीं होती ? तू मेरा बहना मान ले । जंगल में रह कर अपने सुन्दर शरीर का नाश मत कर । शहर में चल । वहाँ तुझे मृदङ्ग के मोठे म्बर और गान की मधुर तान सुनने को मिलेगी ।'

जसमा में जो शक्ति थी, वह आज हिन्दुस्तान में होनी तो हिन्दुस्तान बौन जाने कैसा देश होता ! जहाँ प्रलोभन हैं वहाँ शक्ति और साहस क्यों ? विदेशी वस्तुओं के आकर्षण में भारतीय जनता बुगी तरह लुभा गई है । आज यह दशा है कि जिसके घर में बिलायती बस्तुएँ नहीं, वह घर नहीं—जंगल माना जाता है । अगर सामान्य हिन्दुस्तानियों की तरह जसमा लोभ में पड़ जाती तो उनके सर्वोत्थ की अनमोल निधि सुरक्षित रहती ? हर्गिज नहीं । आज के लोग कैशन की फॉमी में बुगी तरह फँस गये हैं ।

गले में फॉमी पहने पर ही मशारी का बन्दर उसकी उँगली के इशारे पर नाचता है । जंगल का बन्दर मशारी के नचाने पर क्यों नहीं नाचता ? कारण यही है कि उसके गले में फॉमी नहीं पहनी है ।

आज करोड़ों रुपये कैशन के निमित्त बर्बाद हो रहे हैं और देश की सम्पत्ति विदेशों में चली जा रही है । बच्चों को नशा करने देखकर विचार आता है—इन दालकों का जीवन किस प्रकार मुय-

रेगा ? आज की रात किंग्वाबली दुपित है कि वह बालकों के जीवन-सुधार की ओर जरा भी लक्ष्य नहीं देती । मगर यह मच कहे कौन ? अगर कोई कहता भी है तो वह गश्चट्रोही समझा जाता है ।

मिसराज से जममा कहती है—'तुम्हारे गायनों और बाजों में बिप भरा है, मेरा मन उस बिप की ओर नहीं जाता । मुझे तो जंगल में रहने वाले मोर, पपीहा और कोयल की भीठी ध्वनि ही भली लगती है । मेरे कान इन्हीं की मधुर टेर के अध्यासी हैं ।'

कोयल को चाहे सोने के पीजरे में रक्खो और उत्तम से उत्तम भोजन दो, फिर भी वह आनन्दविमोह होकर नहीं बोलेंगी । उसकी मस्त टेर आग की मजरी पर ही सुनारि देगी । वह परतन्त्र होकर नहीं बोलेंगी, स्वतन्त्र होकर ही कूकेगी ।

जममा कहती है—'कहां तो मोर, पपीहा और कोयल का मिसर्ग-सुन्दर मधुर गान और कहां निर्जीव बाजों की आवाज ! मोर, पपीहा और कोयल की अमृतमयी ध्वनि में जो आकर्षण है, जो मनोहरता है, मिठास है, वह नकली गीतों में कहां है ? मुझे तो इन पक्षियों की बोली ही प्यारी लगती है सहाराज, मैं जंगली और कैदारिन जो ठरती !'

मोर, पपीहा और कोयल की टेर से आज तक किसी में क्या बात पैदा हुई है ?

'नहीं !'

और बैरवा के नाचों से कोई सुधार है ?

'नहीं !'

जसमा का निर्भोक और निश्चित उत्तर सुन कर भी सिद्धराज ने हार न मानी। वह कहने लगा—‘पगली जममा ! मेरी बात पर भली भाँति विचार कर देख। क्यों इस जंगल में अपना सुन्दर जीवन बया बर्बाद कर रही है ! तुझे अत्यन्त सुन्दर महल रहने को मिलेगा। बहुत-सी दामियों तेरा हुक्म बजाने को तैयार रहेंगी। मेरे पास हाथी, घोड़े, रथ आदि सभी कुछ है। वह सब तेरे ही होंगे। तेरा अच्छा स्वभाव देखकर ही तुझ से आग्रह करता हूँ। ऐसे स्वभाव वालों से प्रीति करना राजाओं का धर्म है।

राजा की नीयत की जसमा पहले ही ताड़ गई थी, अब उसके वाक्यों से वह एकदम स्पष्ट हो गई। जममा बोली—‘महाराज ! मुझे महलों की आवश्यकता नहीं है; मुझे मौपही ही बस है। मैंने महलों पर चढ़ना सीखा ही नहीं। मैं स्वयं अपने पति की दासी हूँ। मुझे और दामियों का क्या करना है ? दामी होने के साथ मैं अपने पति की स्वामिनी हूँ। ऐसी दशा में दामियों की स्वामिनी बनकर क्या करूँगी ?

सिद्धराज—ओह न, पत्नी ! क्यों सूखी-सूखी रोतियों पर गुजर करनी है ? मैं तुझे मेवा, मिष्ठान और चटुरम भोजन दूंगा। तू जानती है, मैं गुजरात का स्वामी हूँ। असौम सम्पत्ति और ऐश्वर्य मेरे यहाँ बिखरा पड़ा है। सोच ले। ऐसा अवसर फिर न मिलेगा अभी राजमहल का द्वार तेरे लिए खुला है, जिसके लिए अप्सराएँ भी तरसती होंगी।’

जसमा—आप बड़े दयालु हैं। इसी कारण मुझे पकवान और उत्तम भोजन सिलाना चाहते हैं। मगर मुझ अभागिनी के

भाग्य में यह सब कहीं है ? मेरे पेट में तो मक्की की पाट ब्या जाते हैं । यह पकवानों को पचा नहीं सकता । मुझे राख और दलिया भजना । पकवान और मेवा-मिष्टान्न आपको मृषारिक हो । आप वास हाथी हैं, घोड़े हैं, मगर मैं उन पर सवारी करने में जाती हूँ कहीं गिर कर मर गई तो ? मेरे लिए तो भूखें भैंस ही मक्की है, जं दूध-दही देती है और हम सब आनन्द के साथ खाते हैं ।

संसार का काम घोड़े में चलता है या भैंस में ?

‘भैंस में ।’

लेकिन अमल बात को लोग भूल जाते हैं । इसी कारण लोह घोड़े को पसन्द करते हैं ।

मिदरात्र— क्या तुम ऐसे पटे पुगान और मोटे कपड़े पहनने के बिना त्रयी हो ? मैं मेरा मसायम और चारीक बन्धूंगा कि तुम्हारा एक रोम भी टूटा न रहेगा । तुम्हें हीरा और मोती के मुन्डर पहनने पहनने को मिलेंगे ।

जो गिरी गोल को ही तारी का सर्वोत्तम आभूषण समझती है, उनके मन में बर्दिय बन्ध और हीरा मोती के आभूषणों को क्या के मत हो सकती है ? इन्हे इन्डालों बना देने का प्रयोजन भी नहीं मिल सकता । गोल के बिना मज्जा वाली के बिना यह तुम्हें— क्या तुम्हें है मक्की मालवती अपने माल का मूल्य देकर कहीं कहीं नया नया बहना ।

जो व... .. का मान-मान प्रमाण है

... .. का मान-मान प्रमाण है

बच्चों का चलन बढ़ गया है। यह प्रथा क्या और अच्छी समझते हैं ?

‘नहीं !’

मगर आज तो यह बह्मपन का चिह्न बन गया है। जो जितने बड़े घर की स्त्री, उमकें बनने ही चारीक बख ! बह्मपन मानों निर्लज्जा में हो गई ? क्या चारीक बख लाज ढेक सकते हैं ? इन चारीक बखों की बहाने भारत की जो दुर्दशा हुई है, उसका ध्यान नहीं किया जा सकता।

गड़नों और बखों का सालच क्रियों के लिए साधारण नहीं है। लेकिन जमगा साधारण स्त्री भी नहीं है। वह कहती है—‘मुझे चारीक कपड़े नहीं चाहिए। मेरे शरीर पर तो खादी के कपड़े ही ठहर सकते हैं। चारीक कपड़े पहन कर मैं मजदूरी कैसे कर सकती हूँ ?’

मोटे कपड़े मजदूरी करना सिखाते हैं और महीन कपड़े मजदूरी करने से मना करते हैं। महीन कपड़ा पहनने वाली दाई अपना रक्षा लेने में भी संजीव करती है, दस डर से कि वहाँ कपड़ों में धूल न लग जाय। इन प्रकार चारीक बखों ने सन्तान-प्रेम भी छुड़ा दिया है।

जमगा कहती है—‘मुझे न चारीक बखों की ही आवश्यकता है, न हीरो और मोतिया की हों। हारा मोतिया पहनने में तो जान का खतरा बढ़ जाता है। मेरा धर्म आभूषणों के बिना ही मुझे प्रेम करना है। फिर क्यों मिगारूं मैं मुझे क्या आवश्यकता है ? मैं कहने वाले की ही प्रसन्न रहना चाहती हूँ। मुझे बच्चों का प्रसन्नता में कोई मतलब नहीं।’

राजा सभी प्रकार के प्रलोभन देकर भी अपने उद्देश्य में सफल न हो सका। उसने अनेक पन्ने फैलाये, फिर भी शिकार न हुआ। तब कुछ-कुछ निगारा साध से राजा ने कहा—'तू जिस पति को प्रसन्न करना चाहती है, उसे दिखा तो मही। कौन है तेरा पति? देख कह देता है ?'

बड़े-बड़े सर्रासों में और बड़-बड़ी हवेलियों में रहने वालों के लिए साम्राज्य प्रेम का क्या मूल्य ? साम्राज्य-प्रेम की कीमत-जंगल वाले ही जानते हैं। सीता और राम ने अपने साम्राज्य-प्रेम की बुद्धि जंगल में ही की थी। विषय-भोग के छोड़े साम्राज्य-प्रेम की पवित्रता को क्या समझेंगे ?

जमया ने कहा—'बड़ जो कमर कम कर काम कर रहा है, जिसके हाथ में कुताभी है, जो अपने सावियों को माहम बेधाता हुआ मिट्टी खोद रहा है और जो मिट्टी खोदने में सब से आगे है, जिसकी कुताभी की कोट से चूल्ही खोली है और जिसके गिर पर कुत्त गुप्ते हैं, वही मेरा पति है। मैंने हमके गिर पर कुत्त गुप्ते दिये हैं, जिसमें बड़ाबट के समय उसे विधाय दिये।

जमया के पति का नाम टीकम था। टीकम की और देखकर मिट्टाराज ईर्ष्या की आग में जल-सुन गया। उसने जमया से कहा—'बस, बड़ी ठोस पति है। कीचें के गले में रखो को माथा ! हम मिट्टी खोदने वाले मजूर के लिए ही तू मेरा अपमान कर रही है ? हमनी कीचें के पास मही मोहनी जमया ! हमनी की सोचा हम के माथ माथ रहने में ही है। तू मेरे मरत में बल। तेरी सोचा मरतों में बदेगी। तेरे पति को कुछ पर विराम भी मही है। देख न, १०

ही तरफ बह देही-देही नहरों में देख रहा है। उसकी नजर से साफ मालूम होता है कि उसका तेरे ऊपर न प्रेम है, न बिरबास ही है। मेरा आश्रमी तेरी बट्ट क्या जाने ? ऐसे अबिरबामी पति के साथ रहना पोर अपमान है। तू चिन्ता मत कर। तुझे रानी बना दूंगा।

सचमुच टीकम इसी ओर देख रहा था। वह सोचता था—
'राजा मेरी स्त्री से क्या बात कर रहा है ?'

राजा ने साम और दाम में बाम लेने से बाद भेदनीति से बाम-निवाहने की चेष्टा की। मगर जममा को पुमलाना बालू में तैल निवाहना था।

जममा बहने लगी—'राजा साहब, बहावत मरहूर है—'सौच की औष नहीं।' मरह मरह निर्भय होता है। मेरे पति की मुझ पर पूर्ण बिरबाम है। मैं अपने पति के अतिरिक्त अन्य पुरुषों को भाई के समान समझती हूँ। पारंपरिक अबिरबाम की भावना तो राज-घरानों की ही सम्पत्ति है। हम दरिद्रों को यह सम्पत्ति क्यों जलोब होती है ? अगर मुझे अपने पति पर अबिरबास हो तो उसे मुझ पर भी अबिरबास हो सकता है। मगर ऐसा नहीं है। मेरा पति आपकी देख रहा है, क्योंकि आपकी दृष्टि बिगड़ी हुई है।

राजा ने देखा, भेदनीति भी यहाँ बागमर नहीं हो सकती। तब सिद्धराज ने बहक कर कहा—'जममा, तूया मेमाम। मूजानकी नहीं मैं बीम हूँ ? बड़े-बड़े मरहूर, राजा और मरहूरों भी मेरे बरहो में मिर मुकडे हैं और मेरी और बड़े ही बीम रहते हैं। बड़े भी मेरे मुकम के सिवाय जमान कोतने का मादम नहीं हो

मकता। फिर तू किस खेल की मूलों है ? तेरे पास क्या बल है जिसके बूते पर तू मेरा हुक्म टाल रही है ? आधिर तो मजदूरी करने वाले की ही खी टहरी न ! तू किस मुँह से मेरे सामने बोलती है ? एक बार फिर चेनाबनी देता हूँ। विचार कर देख। व्यर्थ मगर बर्बाद न कर। क्या तेरे कहने से राजा अपना डठ छोड़ सकता है ?

1) भेदनीनि ने काम न दिया तो राजा ने दूल्हनीनि ग्रहण की। साधारण खी राजा की इस धमकी से डरकर जाती। उसका डर काँप उठता। वह बिबरा हो जाती या आँसू बहाने लगती। मगर धन्य जममा ! वह योग्यता तनिक भी बिचलित न हुई। उसने पनी प्रकार कड़क कर उत्तर दिया—‘बड़े-बड़े सूरमाओं को अपने बरतों में झुकाने बाशा बीर एक मजूरिन के तलुबे चाटने को तैयार हो जाय, यह आश्चर्य की बात नहीं तो क्या है ? महाराज, आपकी महादुरी का इससे बढ़ कर और क्या मयूत हो सकता है ? हाँ, मैं जानती हूँ कि आप गुजरात के स्वामी हैं और मैं असहाय खी हूँ। मैं यह भी जानती हूँ कि गवण खंका का प्रचण्ड प्रतापी राजा था और हमारे पंजे में पड़ी मीता असहाय थी। मगर सीता ने अपना धर्म नहीं छोड़ा। आप पूछते हैं—मेरे पास क्या बल है ? मेरे पास मनीष की शक्ति है। जो तीन लोक में अजेय है और जिस शक्ति की बदीनन मीता आज भी अमर है।

आपने बड़े-बड़े राजाओं को बरा में किया, यह ठीक है किन्तु आपका बल काया और माया पर ही तो है। आत्मा इन दोनों में जुड़ी है। मेरे गुरु न यह बात मुझे पहले से ही बता रक्खी ।

आने की आवश्यकता आप को ही है। मैं होरा में ही हूँ अब क्या होरा में आऊँगी ?

यह मेरी अन्तिम प्रार्थना है। मैंने अब तक आपसे बातचीत की है लेकिन अब मैं समझ गई कि आप मेरे पति के शत्रु हैं। मैं आपने पति के शत्रु का मुँह नहीं देखना चाहती। इसलिए अब मैं आपसे सामने घूँघट निकालती हूँ। अब मैं आप से कोई बात नहीं कहूँगी।

बढ़ बढ़कर जमना ने राजा के सामने घूँघट निकाल दिया। आप्रकृत घूँघट की प्रथा निरासरी हो गई है। शिथिल जनमान और गुलशानियों के आगे तो घूँघट खाली नहीं, किन्तु देवर, जेठ और परिचित लोगों के सामने, जो उन्हें अपनी बहिन-बेटी समझते हैं, छुपा घूँघट बाँधी है। वही दुष्ट और दुराचारियों के सामने घूँघट निकाला जाता था, जैसे जमना ने मिहिराज की दुराचारी समझ कर उसके सामने घूँघट निकाल दिया।

सूरज की काली चमकित, चंदे न दूनों रंग।

बड़ी बराबर बड़ी चमकते हुए। जमना की तेजवी भावना बड़ी हुई ज्ञान और तर्क से सतत चर्चा का, कार्य में अनुपम हो जाने मिहिराज पर नैतिक की प्रभाव न पड़ा। यह जमना की ओर से सर्वथा निरास हो गया।

जमना की अवांछा से अनुपमान एवं चरित्र निरूपण।
देखा है मिहिराज की अपनी अवमान को दृष्टि की तरह धूम।
या यह जमना का मोह की मरणात् नहीं कर लक्ष्मी का।
महान १००० 'जमना का चरित्र' कहकर संपन्न आदि।

जसमा अपना भविष्य साफ-साफ ताड़ चुकी थी। उसे अपने गपहरण की आशंका हो चुकी थी। ज्यों ही राजा नगर की ओर बाना हुआ कि जसमा ने अपने पति को बुलाकर सारा घृतान्त तद सुनाया। उसने यहाँ न ठहर कर तत्काल चल देने के लिए भी प्रामद किया।

टीकम अपने साथी ओड़ लोगों के साथ पाटन से रवाना हुआ। राजा को पता चला कि जसमा और उसके साथी ओड़ भाग गये हैं। वह थोड़े पर सवार होकर जसमा को पकड़ने लड़ा।

जसमा और उसके साथी कुछ ही दूर पहुँचे थे कि राजा ने उन्हें रोक लिया। वह बोला—'जसमा की मुझे मौप दो। मैं उसे चाहता हूँ।'

ओड़ निशस्त्र थे, मगर फायर नहीं थे। भला कौन जीवन पुरुष आँखों के सामने खी का अपमान होते देख सकता है? ओड़ लोगों ने राजा का सामना किया। राजा ने बहुत से ओड़ों के सिर काट डाले। जसमा के पति टीकम ने भी अपनी पत्नी की रक्षा करने में प्राण होम दिये। अन्त में जब जसमा ने देखा कि अब मैं असहाय हूँ और राजा के अपवित्र स्पर्श से मेरा शरीर अपवित्र हो जाने की संभावना है तो उसने अपने पेट में कटार भोंकते हुए कहा—'राजकुल-कलंक! फायर! ले, मेरा बलिदान ले। मेरे दाढ़-मांस को अपने महल में सजा लेना। यह तेरी लम्पटता को, तेरी कामुकता की और तेरी नीचता की गौरव-गाथा सुनाता रहेगा।'

पतञ्जलि जन्मने अपने पशु का जन्म, जन्म की एक

उपनिषद् का अर्थ है कि जन्म केवल एक ही है, वह है जन्म।

नहीं की, नारी के गौरव की और सम्मान की भी रक्षा की। बरकरार धिर-धमर हो गई। जसमा का जस इतिहास के पृष्ठों पर मुनहरे अक्षरों में चमक रहा है। आज भी लोग इसमें घेरल पाते हैं।

कहते हैं—मगी जसमा ने मरते-मरते सिद्धराज को शाप दिया था—‘राजा, तेरा ताआब खाक्षी रहेगा और तेरा बंरा नहीं चलेगा।

यह सब देख और सुनकर राजा का दिव दहज गया। वह अपनी करतूत पर पड़नाथा होने लगा। ताआब खाक्षी रहा।

जसमा ने कौन-सा शास्त्र पढ़ा था और किम गुह ने उसे शिक्षा दी थी यह नहीं कहा जा सकता। तथापि इसमें सम्येह यह कि वह मर्फी पतिव्रता थी और पतिव्रत धर्म का मर्म हमने मगी मीनि भममा था।

मैंने व्याख्यान में कहा था—

ओ त्रिन मोहनगारो छे,
जीवन प्राण हमारो छे ।

इस प्रार्थना में बनलाया गया है कि राजीमगी के त्वारे नेमो रबर हमें भी प्यारे लगने दें। जसमा ने अपने पति टीकम के बिरा गुजरान के प्रतापी राजा को भी दुधरा दिया, तो क्या हमारा भगवान टीकम में छोटा है ? ‘नहीं !’

तो फिर हम भगवान को मोहनगारो बनाकर संसार के बहुत-विन सुखों को चाग भी लाग क्यों न मार दें ? भगवान् को मोहनगारो मान कर धर्म का वाचन करोगे तो परम कल्याण के भाग्य बनेंगे ।



— ईश्वर की सौज —



श्रीमहावीर नमू' नर नापी ।

शासन जेहनो बाप रे प्राणी ॥

यह बाँटनवे तीर्थपुर भगवान् महावीर की प्रार्थना है । जो सब विद्वान हैं वह भगवान् महावीर का ही हैं । साधु, साधक और भाविका, यह षतुर्विध सभ भगवान् महावीर ने स्थापित किया है ।

साज भगवान् महावीर स्मृत रूप में हमारे सामने नहीं हैं। लेकिन जिसे भगवान् महावीर पर भ्रम है, उसे समझना चाहिए कि षतुर्विध सभ में ही भगवान् महावीर हैं । भगवान् तीर्थपुर ये और तीर्थ की स्थापना करने वाले तीर्थपुर कहलाते हैं । आज तीर्थपुर नहीं हैं, लेकिन उनके बनाये तीर्थ मौजूद हैं । जिस कारीगर का बनाया हुआ किसी प्रकार और सुदृढ़ है तो निश्चय ही वह कारीगर वह बना ही होगा । जिसका सभ आज हजारों वर्ष की नींव हो जाने पर भी मौजूद है उस सभ का सत्प्रायश्चित्त कोई होना ही चाहिए और ... महावीर भगवान् सभ के रूप में प्रत्यक्ष हैं ।

व्यावहारिक दृष्टि से हम में और भगवान् में समय का बहुत अन्तर है, लेकिन गौतम स्वामी तो भगवान् महावीर के समय में ही थे। भगवान् ने ही गौतम से भी कहा था—

‘न तु जिसे भज दीसइ ।’

अर्थात्—गौतम ! आज तुझे जिन नहीं दीखते, (लेकिन तू इसके लिए सोच मत कर। उनके द्वारा उपदिष्ट स्वादाद-मार्ग तो तेरी दृष्टि में ही है। तू यह देख कि यह मार्ग किसी अल्पज्ञ का बनलाया नहीं हो सकता। तूने न्यायमार्ग प्राप्त किया है, अवश्य जिन को न देख पावे की परवाह मत कर। उनके उपदिष्ट मार्ग को ही देख कि यह सचा है या नहीं? अगर उनका मार्ग सचा है तो जिन हैं ही और वह सचे हैं।

प्रश्न होता है, भगवान् स्वयं मौजूद थे, फिर उन्होंने गौतम स्वामी से क्यों कहा कि आज तुझे जिन नहीं दिखाई देते? इस कथन का अभिप्राय क्या है?

इस गाथा का अर्थ करते हुए डाक्टर हर्मन जैकोबी भी गढ़-बढ़ में पड़ गये थे। अन्त में उन्होंने यह गाथा प्रसिद्ध (बाद में मिलाने हुई) समझी। उनकी समझ का आधार यही था कि सुदूर भगवान् महावीर बैठे थे, फिर वह कैसे कह सकत कि आज तुझे जिन नहीं दीखते? इस कारण उन्होंने निश्चय दिया कि यह गाथा प्रसिद्ध है।

डाक्टर हर्मन जैकोबी की ग्रीह-बढ़ा तक गढ़ा, लेकिन वास्तव में यह गाथा प्रसिद्ध नहीं है, सूत्रकार की ही मौलिक रचना है। भगवान् महावीर केवलज्ञानी जिन थे और गौतम स्वामी दृक्स्थ थे।

खल्लुहानी को बेबल्लुहानी ही देख सकता है । तद्वत् नही
रकता । जगत् गीतन स्वामी, जो हृदय में—बेबल्लुहानी को
‘न, नद नो बह इत्यं जमी समय बेबल्लुहानी बहाने । आया
दूर से बहा है—

‘बल्लुहानी वामगम्य नति ।’

जगत्—मर्त्य के लिए उपदेश नहीं है ।

इस गाथा में और ऊपर की गाथा में प्रकट है कि गी
स्वामी उस समय हृदय में । इस कारण उन्हें पूर्ण करने के
भगवान ने उपदेश दिया है । भगवान के कथन का अभिप्राय
है कि—‘हे गीतन’ मेरी हृदय-अवस्था के कारण मैं तुम्हें के
ज्ञान नहीं दीवता । मेरा जिनपना तुम्हें मालूम नहीं होता । का
शरीर जिन नहीं है और जिन शरीर नहीं है ।

जिनपद नहीं शरीर को, जिनपद चेतन मय ।

जिन बल्लुह कह और है, यह निज बल्लुह नाथ ॥

माधुर्य जगत् नेत्रों से दिखाई देने वाले अष्ट महाप्रति
तो जिन समस्त हैं, लेकिन यह महाप्रतिहार्य जिन नहीं हैं ।
महाप्रतिहार्य तो नायाब—इन्द्रवाहिनी भी अपनी नाया से
मरने हैं । बाल्य में जिन को चेतना है और उस चेतन रूप
तो जिन ही प्रत्यक्ष में देख सकते हैं ।

इस कथन का सांगत्य यह नहीं है कि जिन भगवान का ज
मं नद शरीर । इसका ठीक आशय यही है कि जिन दशा का
न का-मा के दो हुने ने और उमे केव-ज्ञानी के सिवाय द
ने, जिन ही प्रत्यक्ष में देख सकते हैं ।

नब प्रश्न उपस्थित होता है कि साधारण आदमी उस भट्ठा कैसे करे ? जिन को हम पहचान नहीं सकते । ऐसी अवस्था में कोई भी हमें कह सकता है कि मैं जिन हूँ । जब हमें जिन दिख नहीं देते तो हम किसे वास्तविक जिन मानें और किसे न मानें ?

इस विषय में शास्त्र कहते हैं—विना प्रमाण के जिनो को जिन मानना ठीक ही है, लेकिन जिन भगवान को पहचानने के लिए तुम्हारे पास प्रत्यक्ष प्रमाण का साधन नहीं है । जिन को केवल प्रत्यक्ष से जान सकते हैं । तुम स्वप्न हो, इसलिये अनुमान निर्णय करना होगा । अनुमान प्रमाण से किस प्रकार निर्णय है, इसके लिए एक उदाहरण लीजिए—

एक आदमी यमुना नदी को बहती देखता है । वह प्रत्यक्ष यमुना का बहती देख रहा है, लेकिन कालिन्दी कहलाने वाली काजिजा पहाड़ से निकलने वाली यमुना का उद्गमस्थान उसे शीघ्रता । उसे यह भी नहीं दीख पड़ता कि वह किस तरह मनुष्य मिल गई है । इस प्रकार यमुना नदी सामने है, मगर हमका और अन्त हमें मजूर नहीं आता, सिर्फ थोड़ा-सा मध्यभाग दिखाई देता है । इस मध्य भाग को देखकर मनुष्य को अपनी समझानी चाहिए कि जब इसका मध्य है तो आदि और अन्त भी होगा ही । हाँ, अगर मध्यभाग भी दिखाई दे और आदि-अन्त मानने को पड़ा जाय तो बात दूसरी है, अन्यथा एक धरा को कर दूसरे पर बिना देखे भी विश्वास करना न्याययुक्त है ।

उदाहरण की यही बात गौतम स्वामी के लिए भी समझनी चाहिए । भगवान कहते हैं—गौतम ! तू मुझे अबर्दस्ती जिन

जाहिर और यदि वह परिपूर्ण दिव्य है तो उसके चरित्र को भी
परिपूर्ण समझ लेना चाहिये। इस प्रकार करने से ईश्वरीय भाग्य व
बलने की राशि प्राप्त होगी और धीरे-धीरे ईश्वरत्व भी प्राप्त
में होगा। ईश्वरत्व प्राप्त होने पर ईश्वर दिव्य है देगा। अतः
कहिए कि वह समय ईश्वर को देखने की आवश्यकता ही नहीं
होगी।

अतः ही प्रकार से होना है—बुद्धि में और इन्द्रियों में
इन्द्रियों में देख कर ही अतः ईश्वर को मानने की इच्छा रखनी चाह
नी पड़ी मनुष्य ही होगी। ईश्वर केवल बुद्धि मात्र है और वह
विशिष्ट बुद्धिगम्य है।

जिस समय तुम अगवाह महावीर के चरित्र के मर्म को मनी
मोति जानोगे वह समय वह ही तुम्हें मान्य हो जायगा कि वेम
स्वर्ग दिमी अमल के द्वारा होता है। यह मान्य
तुम्हें अगवाह का साक्षात्कार कराया। इसी से ईश्वर की ईश्वर
वदमान पाओगे।

अभी का कथन है कि ईश्वर को ईश्वर के लिए ईश्वरत्व पर
वदनी ईश्वरत्व वदनी विगत है और तुम्हारे पास छोटे-छोटे
है। इनके द्वारा तुम करो वदनी वदनी मनी है। फिर इनका मनी
का ईश्वरत्व पास करो है। ईश्वर को मानने का दीक्षा दया वदनी
है। मन को ईश्वर और ईश्वर बनाओ। फिर देखोगे तो ईश्वर तुम्हारे
हैं मित्र-मित्रता दिव्य है देगा।

तो ही वदनी तुम्हारे, मैं तो ईश्वर के पास में।

तो ही ईश्वर का मैं ईश्वर का वदनी ईश्वर में।

तो ही ईश्वर का मैं ईश्वर का वदनी ईश्वर में।



मानती थी कि पुरुष इतने मानहीन, बुद्धिहीन और सतहीन हैं। लोग स्त्रियों को कायर बतलाते हैं, मगर पुरुषों की कर्मा रही है। ऐसे पुरुषों से तो स्त्रियाँ ही अधिक बहादुर हैं।

फिर दुष्ट दुरशामन हुआ या मुदित जिनकी सींचकर ।
 ले दाहिने कर में बही निज केश-लोचन सींचकर ॥
 दृष्ट कर हृदय पर वाम कर शर-विद्ध हरिणी सी हुई ।
 बोली विकसलर शीपरी बाणी महा कठणामर—
 कठणामदन ! तुम कौरवों के संधि अब करने लगे ।
 विन्ता क्या सत्र पादद्वयों की शान्ति कर हरने लगे ॥
 हे राज ! तब इन मलिन मेरे मुक्त केशों की क्या ।
 हे प्रायेण मर भूज जाना, पाद रखना सर्वथा ॥

शीपरी उग्र रूप धार करके कृष्ण और पादद्वयों के साथ अपने हृदय के भाव प्रकट कर रही है। शीपरी का कठण-कथन कर कृष्ण के रथके छोड़े और समस्त प्रकृति भी जैसे गतकर रह गयी। सब लोग चकित हो गये। मोचने लगे—आज शीपरी अपने का सारी कथा राज्यों के मार्ग से कृष्ण के आगे उद्गेल रही है।

दुरशामन हठा सींचे हुए केशों की अपने दाहिने हाथ में और बावों हाथ अपनी छाती पर रखकर शीपरी ने कृष्ण से कहा—
 प्रभो ! आप संधि करने आते हैं ? और सिके पाँव गाँव से कर करेंगे ? ठीक है कौन ऐसा मूर्ख होगा जो विराट राज में से के पाँव गाँव देकर संधि न कर लेगा ? फिर आप सरीखे संधि कर बाँधे दूत क्यों हैं, वहाँ तो कहना ही क्या है ? वहाँ संधि हो सकेगी ही क्या हो सकती है ? आप संधि करके पादद्वयों की वि

द्रौपदी बाण से बिधी हुई दिरनी की तरह रोने लगी । कहा

कह कर बचन यह दुःख से तब द्रौपदी रोने लगी ।

नेत्राश्रु धारा पान से कृश शरीर को धोने लगी ॥

हो द्रवण करके सबल उसकी प्रार्थना कहलामगी ।

देने लगे निज कर उठाकर मान्दवन उसको दगे ॥

द्रौपदी अपनी आँखों के आँसुओं से अपने दुबले शरीर जैसे स्नान कराने लगी । हृदय के घोर संताप-संतप्त शरीर को बँटा करने का निष्फल यत्न करने लगी । निष्फल यत्न इसलिए उसकी आँख भी गरम हो ये भीर वनमें संताप मिश्रण के वस्त्र ही मकना था ।

द्रौपदी की प्रार्थना सुन कर कृष्ण का हृदय भी पिघल गिर भी उन्होंने अपने को संभाला और हाथ उठाकर वह द्रौपदी मान्दवना देने लगे ।

द्रौपदी की बातों का उत्तर देना कृष्ण को भी कठिन जान पड़ा । द्रौपदी की वही बातें सत्य मन्ते हैं, लेकिन क्या कृष्ण को संधि की रक्षा भंग करके धर्मराज से कद देना चाहिए कि—अथ संधि की बात मन करो । तब बार दूत भेज ही दिया था, क्यादा पंचायत में पड़ने की जरूरत नहीं है । दुर्योधन दुजन । वह जो मानने का नहीं । उसमें कोई भी न्याययुक्त बात कहना उ में बीज बोना है । अतएव समय न खोकर सदा की नैयारी क द्रौपदी की बातों की सचाई समझने हुए भी बुद्धिमान कृष्ण ने नहीं कहा । बल्कि वह द्रौपदी को मान्दवना देने लगे । उन्होंने अपने प्ये नहीं छोड़ा ।

चित्त का चंचल हो जाना—स्वाभाविक है। साधारण मनुष्य को ऐसा ही होना है। लेकिन मेरा जन्म मनुष्य प्रकृति की ही में ही मिलाने के लिए नहीं है। मैं अपने आचरण द्वारा मानव-प्रकृति को शुद्ध करके सत्यपथ पर लाना चाहता हूँ। यही मेरा जीवन-उद्देश्य है। अगर तुम्हें मुझ पर विश्वास है तो ध्यानपूर्वक मेरी बात सुनो।

कृष्णजी की यह भूमिका सुनकर लोग उत्सुकता के साथ प्रतीक्षा करने लगे कि देखें, द्रौपदी की बातों का कृष्णजी क्या उत्तर देते हैं। इस समय धर्मराज को बहुत प्रसन्नता हुई। वह सोचने लगे—‘संधि की बात मैंने ही चलाई थी, लेकिन द्रौपदी ने अपनी बातों से मेरी योजना निर्बल बना दी थी। द्रौपदी ने मुझ पर मात्र उत्तर दायित्व डाल कर एक प्रकार से मुझे कायर मिथ किया है। भाई भी द्रौपदी की बातों से मदमत हैं। अभी तक वह चुप रहे मगर द्रौपदी ने अपना अधिकार नहीं छोड़ा। उमने सदन भी तो बहुत किया है ! सबसे अधिक अपमान उसी का जो हुआ है।

द्रौपदी की बात का उत्तर देने में धर्मराज अपनी असमर्थता अनुभव करते थे। उमने धर्मराज पर भी अभियोग लगाया था। मगर कृष्ण का सहाय मिलने से उन्हें प्रसन्नता हुई।

कृष्णजी की बात सुनकर सब लोग आश्चर्य करने लगे कि द्रौपदी की यह प्रबल युक्तियों से परिपूर्ण बातें भी कृष्णजी को नहीं जँची ! सब विस्मय में डूबे हैं और धर्मराज प्रसन्नता अनुभव कर रहे हैं।

इस अवस्था में कृष्णजी कहने लगे—‘द्रौपदी ? तुम्हारी बातें नीति और युक्तियों में से भरी हैं, फिर भी मुझे अच्छी नहीं हैं।

मैंने सच बातें कह दी हैं । लेकिन मुझे अपना कर्जोच्च करने तुमने जो कुछ कहा है सो आवेश के बराबर हो कर ही । तुम मंत्री वार्ता से दुस्मिन हुई हो । तुम मोचनो दो-पाँच गाँवों से इमादा कैसे चलेगा ? और इस प्रकार मंथि कर लेने में उनकी जीत हमारी द्वार समझी जायेगी । द्रोपदी ! तुमने जन में रह कर अपना काम चलाया है; इसलिए शाबद पाँच गाँव लेकर काम में तुम्हें कठिनाई नहीं भी मालूम होती हो, नो भी इस प्रकार काम में तुम्हें कौरवों की सुदृढता और अपनी लघुता प्रतीत होती है । कारणों से तुम मंथि का विरोध कर रही हो । लेकिन तुम्हें यह मालूम कि मंथि करने में क्या रहस्य छिपा हुआ है । यह बात जानना या धर्मशास्त्र जानते हैं । मंथि में पाँच गाँव राज्य काग लिए मैंने नहीं माँगे हैं और न कौरवों में मध्यस्थ होकर ही है किया है । कौरवों की दुष्टता का नाश करने के लिए ही यह उपस्थित की गई है । अगर कौरव पाँच गाँव दे दंगे तो बरबत कहलायेंगे । संसार उन्हें पृष्ठा की दृष्टि में देखेगा । कोई अगर किसी के पास एक करोड़ की धरोहर रख देना है और फिर पाँच रुपया लेकर फैमला कर लेना है; नो पाँच रुपये में कैलाश का बाले का संसार में बराबर होगा । पाँच रुपया देने वाला मोचेगा । एक करोड़ के बदले पाँच रुपया देने में मुझे संसार क्या करेगा । यही बात पाँच ग्राम लेकर मंथि करने में है ।

विशाल राज्य के बदले मिक्र पाँच ग्रामों से मंतुष हो जान पड़ने का तो कल्पना ही है । हाँ इस में कौरवों की ही लघुता है । मैं लड़ाई करने के बदले इस प्रकारका उत्तम आदर्श पेश कर चढ़ा समझता हूँ । इस मंथि से संसार पाँद्यों की प्रशंसा करेगा सभी लोग मुक्त कंठ में पाँद्यों की मगदना करते हुए कहेंगे—पाँ

ने बारह वर्ष तक बन में और एक वर्ष अज्ञान रह कर भी अपने अधिकार का राज्य केवल शान्ति के लिए छोड़ दिया !

क्रोध से आवेश हो आता है । मगर क्रोध का त्याग करना आवश्यक बात नहीं है ।

‘पट खींचने के समय में जो कुछ प्रमाण तुम्हें मिला ।’

दुःशासन द्वारा पट खींचे जाने के समय सभा में ग्यही होकर तुमने भीष्म, शैल्य, धृतराष्ट्र आदि सब से न्याय की भित्ति माँगी थी । न्याय भी क्या ? केवल यह कि धर्मराज अगर जुए में पहले अपने आपकी हार गंवे हों तो फिर उन्हें यह अधिकार कहाँ रहता है कि वे मुझे हारें ? हाँ अगर पहले मुझे हारा हो और फिर अपने आप की, तो मुझे कोई आपत्ति नहीं । तुम्हारे बहुत कहने-सुनने पर भी किसी ने न्याय दिया था ? तुम उस समय की बात स्मरण करो ।

‘श्रीपदी ! तुम इन बेशी को बतला रही हो लेकिन इनके साथ ही उस समय की बात भूली जा रही हो जब तुम्हें किसी ने न्याय नहीं दिया और तुमने सब बल छोड़ दिया और जब मन ही मन कहा—‘प्रभो ! शरीर, लाज, धन, मन, बल आदि तुम्हें सौंप चुकी हूँ । अब तू विज्जा कर, मुझे विज्जा नहीं है ।’ इस प्रकार कह कर निर्दल बन गई थी, तब तुम्हारी रक्षा हुई थी या नहीं ? दुःशामन कहा बर्ना भा, लेकिन तुम्हारा पीर खींचते, खींचते तो वह भी यह गया । उस समय किसीने तुम्हारी रक्षा की थी ?’

महा रत्नो उस समय पर जो अस्तित्व उग का प्राप्त है ।

महा विजैपी पारदो का और अस्तित्व महान है ।

‘श्रीपदी ! तुम्हें इस अस्तित्व मन्त्र पर विश्राम करना चाहिए ।

‘ सर्वं सु मगर्व । ’

सत्य विश्वास ही ईश्वर है, वह समझ कर सत्य पर अदा रक्खो । सत्य पर विश्वास होगा तो ईश्वर पर भी विश्वास होगा ।

कृष्ण ने कहा—‘ प्रीतरी ! जिसने तुम्हारे बख्त बचाए, वही सत्य तुम्हारी जान रक्खेगा । तुम शास्त्र होखो ! उद्योगमा के बरीमूँ होकर तुम इस बख्त मरव को मृत रही हो । ’

तुम्हें जीव की मतिज्ञा पूर्व न होने की चिन्ता है, लेकिन इससे मरव पर अविश्वास होगा है, इसकी चिन्ता है वा नहीं ? और जीवने के मगर्व नाम और अर्जुन का नाम आये थे ? जिस सत्य का अविश्वास बख्त तुम जान चुकी हो, उसे क्यों मुकाये देती हो ? तुम मायागुरु की नहीं हो, संसार की अनुरम शिक्षा देने वाली आदर्श देती हो । तुम पादद्वयों के साथ बन-बन मरकी हो, तुमने विपद के तात्पर्यमय किया है, लेकिन वह सब किया है शक्य पाने की भारा से । मैं कहना हूँ—तुम ईश्वर बनने के लिए ईश्वर को मरवो । जहाँ से शक्य क दुकड़ें पर अकथा कर सत्य पर अविश्वास मन करो ।

माइवो ! और बढियो ! कृष्णजी का वह उपदेश केवल प्रीतरी के लिए नहीं है । वह सर्वमान्य और भारी मरव के लिए भी है । ईश्वर नाम और मृगाक्ष समानानुकार चलदना रहना है, लेकिन सत्य का वह उपदेश सत्य की मति मरव रहेगा । जैसे माय घुब है वही मरवो वह उपदेश भी धुब है ।

कृष्ण कहने हैं—‘ अवि हो जाने पर तुम्हारा मिर न मूँक जानल तो कष्ट पर अवि न हो मरवता ? मिर का मरव भी है । मरव का मरवता है । और ईश्वर मरव की भावना से मरव बरवता है । मिर अकथ पीकथ का मरव है । जीव की मतिज्ञा की अकथ

मरणा । हृदय का मात्सल्य दूर कर दो, मरने पर प्रतिबिम्बित होने लगेगा ।

‘श्रीपरी ! संसार के समस्त आभूषणों में विद्या बड़ा आभूषण है । मनुष्य शरीर का शृङ्गार दार नहीं दे, विद्या दे । बिना दार-शृङ्गार के विद्या शोभा दे सकता है, लेकिन बिना विद्या के दार-शृङ्गार शोभा नहीं देता । मैंने शृङ्गार नहीं कर रक्खा है, तो क्या मैं दुर्लभ लगता ?’ श्रीपरी ! विद्या बड़ी चीज है, मगर क्रोध की मार झेलने हममें भी बड़ी बात है । इसलिए गहने और राजस आदि जाने दो, विद्या भण करो ।

‘श्रीपरी ! मरने पर अटक विद्याम रक्खो । मरने की ही प्रतिबिम्बित होगी । अन्य में स्थितिकरता पराजय के समीप पहुँचना है ।’

इस आशयान पर बहुत कुछ कहा जा सकता है । पर हमें विद्याम पूरक कहने का समय नहीं है । मनुष्य राजोगुण और लोभोगुण के बगलून हाथों के समक्ष विद्याम गति को भूल जाता है । वह वनजाने के लिए ही रह जाता गया है ।

अब हम फिर अपने मन में विचार कर आ जाना है, महापुरुष को विद्याम के लिए क्या है ? ‘वन वचना ॥ तापन म ऊर्ध्वगता ॥’ ‘वन वचना ॥ नमस्कृता श्री गुरुता की पूर्ति हो, समझना चाहिए कि वह वन मर्यादा के ही वन वचना में विद्याम का पराजय है । ‘वन वचना ॥’ वन म हृदय में अगाध का प्रसार होता हो, वन मर्यादा के नहीं हो सकता ।

‘वन वचना ॥’ वन म कहा है कि शरीर के मध्य में सुमेरु पर्वत । ‘वन वचना ॥’ वन म कहा है कि शरीर के मध्य में सुमेरु पर्वत । ‘वन वचना ॥’ वन म कहा है कि शरीर के मध्य में सुमेरु पर्वत । ‘वन वचना ॥’ वन म कहा है कि शरीर के मध्य में सुमेरु पर्वत ।

उसमें सादे शामठ योजन ऊपर सौमनस्य वन है और उसमें श्री हत्तीस हजार योजन ऊपर पाण्डुक वन है। उस पाण्डुक वन के दार अभिषेक शिला है। सूर्येश्वर के जन्म के समय इन्द्र उन्हें उस अभिषेक-शिला पर ले जाते हैं और वहाँ उनका अभिषेक करते हैं। उपनिषद् में कहा है—

‘देवो भूत्वा देवं यजेत् ।’

अर्थात्—इश्वर वन का इश्वर को देव—इश्वर की पूजा कर। यानी अपने आत्मा का स्वल्प पढ़्यान ले, बाहर के भगड़े दूर कर। हम भी परमात्मा की पूजा करते हैं, मगर धूप, दीप, फल और मिठाई आदि से नहीं। ऐसा करना जड़-पूजा है। सही पूजा वह है जिसमें पूज्य और पूजक का एकिकरण हो आय। जैसे गङ्गा की पुतली पानी की पूजा करने से उसके साथ एकमेक हो जाती है—उसी में मिल जाती है, उसी प्रकार इश्वर की पूजा करना आदि शान्ति में कहा है—

‘चित्तिय-चन्द्रिय-महिमा’

अर्थात्—हे प्रभो ! तू कीर्ति है, चन्द्रित है और पुजित है। साधु भी यह पाठ बोलते हैं। यह पाठ बड़ा अत्यन्त के हमारे अध्ययन का है। भगवान की पूजा यदि केवल धूप, दीप आदि से ही हो सकती होनी तो साधु उनकी पूजा कैसे कर सकते थे ?

परमात्मा की पूजा के लिए पूजक को सर्व प्रथम यह विचारना चाहिए कि मैं कौन हूँ। हे पूजक ! क्या तू हाद, माम, नाय या केर है ? अगर तेरी यही धारणा है तो तू इश्वर की पूजा के लिए अयोग्य। ‘तू देवो भूत्वा देवं यजेत्’ लक्ष्य नहीं जान सकता। क्योंकि हाद-

मांस का पिष्ट अर्पण है, जो ईश्वर की पूजा में नहीं टिक सकता। अपने आपको मांस का पिष्ट समझने वाला पहले तो ईश्वर की पूजा करेगा नहीं, अगर करेगा भी तो केवल मांस पिष्ट बढ़ाने के लिए। अगर मांस पिष्ट बढ़ाने के लिए ईश्वर की पूजा की और उसमें मांस बढ़ गया तो चलने फिरने में और कष्ट होगा, मरने पर उठाने वालों को कष्ट होगा और जलाने में लकड़ियाँ अधिक लगेंगी।

मैं पूछता हूँ: आप देव हैं या देवी हैं ? घर है या घरवान है ? आप देवों हम देवी हैं, हम घरवाले हैं। घर तो घूला, ईंट या पत्थर का बना है। अगर देखना आप वहीं घर ही तो नहीं बन गये हैं ? अगर ही बनने आपको घरवान जमाने का घर ही मान लिया तो वही रह ही होगी।

‘देवीं दायामतीति देवी’ अर्थात् देह जिसका है, जो स्वयं देह नहीं—वह देवी है। निश्चय समझो—मैं हाथवान हूँ स्वयं हाथ नहीं हूँ। या निश्चय होने पर तुम देव बन कर देव की पूजा के योग्य अधिकारी बन सकोगे। नीचा मैं कहा हूँ—

इन्द्रियाणि परमाणाः, इन्द्रियेभ्यो परं मनः।

मनसा तु परा बुद्धिः, की बुद्धेः परमातु मः ॥

सूक्ष्मेन्द्रिय, मन का बुद्धि नहीं है। बान बुद्धि को मति देकर मन्त्र पढ़ने का करने वाला है।

जिसने इस प्रकार ईश्वर को समझ लिया है, वह ईश्वर की सेवा में योग्य था नहीं पितृता और न ईश्वर के नाम पर चन्द्रमा की बराबर। वह बड़े से बड़े ईश्वर ईश्वर की पुजाने की निरर्थक प्रयास है।

करेगा। जर्मन लोग इंग्लैण्ड वालों को मार डालने के लिए ईश्वर से प्रार्थना करते हैं और इंग्लैण्ड वाले जर्मनों को मार डालने के लिए ईश्वर से प्रार्थना करते हैं और ईश्वर किसको रक्षा करे और किसे मार डाले ? यह किस का पक्ष ले ? यह ईश्वर की मर्जी प्रार्थना नहीं है। ऐसी प्रार्थना करने वाला ईश्वर को समझना ही नहीं है।

कहा जाता है कि मिर्कन्दर के राज में एक राजकुमार की प्रीति में आया हुआ तीर चुभ गया। मिर्कन्दर आग बधूता हो गया और उसने तीर मारने वाले की जानि के दो हजार कैदियों के मिर कटव लिये। क्या यह ईश्वर की जानि है ? क्या यह न्याय है ? लेकिन मिर्कन्दर के सामने कौन यह प्रश्न उपस्थित करना ? ईश्वर की मर्जी पूजा की आत्मा को उन्नत बनाने के उद्देश्य में ही निहित है। जिसने आत्मा का असली स्वरूप समझ लिया है, उसने परमात्मा पा लिया है। परमात्मा की स्वाध्याय आत्मा में सम्भव होने पर समाप्त हो जाती है।

(३)

शराब न पीना । आज शराब के कई सुन्दर-सुन्दर नाम रख लिये गये हैं । बुद्धि को भ्रष्ट करने वाली सब मादक वस्तुएँ शराब की श्रेणी में ही हैं । गाजा, भेंग, बीरो सिगरेट आदि की गणना मादक द्रव्यों में होती है ।

(४)

बेरया गमन न करना । माधुओं के उपदेश से बेरया भी बेरव बुलि छोड़ देती है । कुलीन जनों को तो बेरया गमन छोड़ना ही पारिव

(५)

परखी गमन न करना । बहुत-से लोग परखी का अर्थ या लगाते हैं कि जिस स्त्री पर दूसरे किसी पुरुष का स्वामित्व हो, वह परखी है । बेरया पर किसी का स्वामित्व नहीं, अतएव वह परखी नहीं है । इस कुतर्क को टालने के लिए यहाँ बेरया और परखी के त्याग अलग-अलग बताया है ।

(६)

शिकार न खेलना । आजकल के कई रईस मन्त्रियों का भी शिकार खेलने लगे हैं । वे लोग बारूद और शकर जमीन पर बिल्ले देते हैं और जब मन्त्रियों शकर पर बैठती हैं तब दियासलाई लगा देते हैं । संचारी मन्त्रियों को अकली देखकर जगत और पिशाचना की हँसी हँसते हैं । यह कितना दानवीय कृत्य है ।

साँप, बिच्छू आदि जन्तुओं को, अन्धों को कोई अपराध नहीं किया है, मारना मरवा करनाचन है । यह लोग कहते हैं—राज नहीं

ज्या हो चल करेगा । मगर ऐसा समझकर उन्हें मारना घोर अन्याय है । कौन भविष्य में अपराध करेगा और कौन नहीं, यह कौन जानता है । मनुष्य भी भविष्य में अपराध कर सकता है तो ना सभी मनुष्यों को काँसी पर लटका देना न्याय है ।

(७)

चोरी न करना । जो चोरी राज्य के कानून के अनुसार दण्डनीय समझी जाती है और लोक में निन्दनीय मानी जाती है, कम से कम ऐसी गल्ल चोरी से नदैव बचना चाहिए ।

(८)

बिबाह आदि के अवसरों पर गालियाँ न मारना, अपरलील गीत न गाना, बाला मुँह नहीं बरना ।

(९)

प्रिय-जन की मृत्यु होने पर बिलस-विलस कर न रोना और हाथी एवं माथा पीटकर न रोना ।

(१०)

बच्चों को भूख का लोभा आदि का भय दिखाकर बापदर न बनाना ।

(११)

सूतक-श्रोत न करना : दाह में सूतक-श्रोत का रहनेवाला बहो बुरा निकलता ।

. १ .

(१३)

टहराव करके घर या कन्या के निमित्त पैसा न लेना ।

(१४)

विवाह में बेरया न बुलाना । बेरया बुलाकर हमका गान बज कराने से दुराचार का प्रचार होता है और दुनियाँ बिगड़ती है ।

(१५)

तेरह वर्ष से कम आयु की कन्या और अठारह वर्ष से कम आयु के लड़के का विवाह न करना ।

(१६)

महीने में अष्टमी और चतुर्दशी को कम से कम चार उपवास करना । उपवास और धारण-धारण नियमपूर्वक करने वाला ठाकुरों की हजारों रुपया देने से बचा रहता है और स्वस्थ रहता है । पाप से भी बचाव होता है ।

(१७)

हिंदी मनुष्य में घृणा मन करो । जलशय्य कहलाने वाले लोग भी तुम्हारे हो भाई हैं । बंद तुम्हारा बहुत उपकार करते हैं । उनका भूख कर भी निश्चय मन करो ।

(१८)

आत्मन्यमय जीवन मन बिनाछो । आत्मन्य मनुष्य का मरत मनु है । आत्मन्य का कारण लोग अधर्म में प्रवृत्त होत हैं ।

एकः परमात्मप्राप्ति के सरल साधन]

(१६)

जीवन परी संयममय बनाओ । धर्म का ही आचरण
 ध्यान का उपार्जन करो, भक्त्यंगति में समय थिताओ । भगवान्
 भजन करो ।

(२०)

जिन वपनों में बड़ी लगन है, वह न पहनना । लो गाय लो
 में पूजनीय माना जाते हैं और जो अत्यन्त अपकारक और बुरा
 हैं उनको बड़ी में धमकी के साथ ही धर्म का न्याय है
 जो वही अकाल दास्य होते हैं और धर्म के वपनों में लड़ना न
 है, जो धर्म से दूर रहना न्याय है जो निर्लज्जता

नाम ले-लेकर कहने लगी—‘हाय ! उस भगतन की करतूत देखो !
वस पापिनी ने मुझे चौर भँजाने के लिए मेरे लड़के को मार डाला !
ठाकन ने मेरा साल खा लिया हाय ! मेरे लड़के को गला घोटकर
मार डाला ।’

आमिर न्यायालय में मुकद्दमा पेश हुआ । दुर्गचारिणी ने
सदाचारिणी पर अपने लड़के को मार डालने का अभियोग लगाया ।
सदाचारिणी को भी न्यायालय में उपस्थित होना पड़ा । उसने
सोचा—बड़ी विचित्र घटना है । मैं उस लड़के के विषय में कुछ
नहीं जानती, फिर भी मुझ पर हत्या का आरोप है । ग़ैर कुछ भी
हो, अभियोग का उत्तर तो देना ही पड़ेगा ।

दुर्गदा स्त्री ने अपने पक्ष के समर्थन में कुछ गवाह भी पेश
किये । सदाचारिणी से पूछा गया—‘क्या तुमने इस लड़के की हत्या
की है ?’

सदाचारिणी—नहीं, मैंने लड़के को नहीं मारा; किमने मारा
है, यह भा मैं नहीं जानती और न मुझे किसी पर शक ही है ।

सामना बादशाह के पास पहुँचाया गया । बादशाह बड़ा
बुद्धिमान और चतुर था । उसने सदाचारिणी को भली भाँति देख
और सोचा—बोड बूढ़ भी बड़े, मयूत बूढ़ भी हो पर यह निरिप
मायूम होना है कि इस लड़के की हत्या नहीं की ।

बादशाह का बजोर भी बड़ा बुद्धिमान था । उसने कहा—‘इस
सामने मैं कानून की कितनी मददगार नहीं होगी । यह मेरे सुपु
की ज़िम्मे । मैं इसकी आज्ञा करूँगी ।’

बादशाह ने वजीर को मानला मौँप दिया। वजीर दोनों स्त्रियों को साथ लेकर अपने घर गया। वह उस सदाचारिणी को साथ लेकर एक ओर जाने लगा। सदाचारिणी ने वजीर से कहा—मैं अकेली परपुरुष के साथ एकान्त में कदापि नहीं जा सकती। आप दो पूछना चाहें, यही पूछ सकते हैं। अकेले पुरुष के साथ एकान्त जाना धर्म नहीं है, फिर यह चाहें सगा घाप ही क्यों न हो।

वजीर ने धीमे स्वर में कहा—तुम एक पान मेरी मानो तो मैं दूँ दरो कर दूंगा।

सदाचारिणी—आपको पान सुने बिना मैं नहीं काट सकती। कि मैं इसे मान ही लूँगी। अगर धर्म थिरक दाव नहीं हुई तो मान लूँगी, शन्यथा जान देना मजूर है।

वजीर - मैं समझता हूँ धर्म नहीं जाने दूँगा, तब तो मानोगी।

सदाचारिणी—आप उस न जाने योग्य पान हैं तो भाव क्यों नहीं करते ?

वजीर - मैं समझता हूँ धर्म नहीं जाने दूँगा, तब तो मानोगी।

सदाचारिणी—आप उस न जाने योग्य पान हैं तो भाव क्यों नहीं करते ?

चाहें तो शूली पर चढ़ सकते हैं—छाँसी पर छटकाने का आपको अधिकार है, परन्तु लज्जा का त्याग मुझ से न हो सकेगा ।

इतना कह कर वह वहाँ से चज़ ही । बज़ीर ने कहा—‘देखो, समझ लो । स मानोगी तो मारो जाओगी ।’ सदाचारिणी ने कहा—‘आपकी मर्जी । यह शरीर कौन हमेशा के लिए मिला है । आसिर मनुष्य मरने के लिए ही तो पैदा हुआ है ।’

बज़ीर ने सोच लिया—‘यह भी सची और सची है ।

इसके बाद बज़ीर ने कुलटा को बुलाकर वही कहा—‘तुम मेरी एक बात मानो तो तुम जीव जाओगी ।’

कुलटा—‘मैं तो जीवी हुई हूँ ही । मेरे पास बहुत से समूत हैं ।

बज़ीर—नहीं, अभी संदेह है । वह बाईं हस्तारिणी नहीं है ।

कुलटा—आप इस के काल में तो नहीं फँस गये ? वह वही भूता है ।

बज़ीर—यह संदेह करना व्यर्थ है ।

कुलटा—किर आप उस हस्तारिणी को निर्दोष कैसे बतलावें ?

बज़ीर—आपका मेरी बात मानो ।

कुलटा—क्या ?

बज़ीर—तुम मेरे सामने कपड़े खोल दो तो मैं समझूँगा । तुम सची हो ।

कुलटा अपने कपड़े खोलने लगी । बज़ीर ने उसे रोक दिया और उल्लाह को बुला कर कहा—‘इसे ले जाकर बैठ लगाओ ।’

महाबाहिली बाई ने उठ कर कहा—'आपके अनुग्रह के आभारी हूँ। मैं आपके आदेशानुसार यही मॉगती हूँ कि या मेरे निधन से न मारी जाय। उस घर गया की जाय।'

बाइसाह ने बगोर में कहा—'तुम्हारे भाग विनम्र मन तिममें आशा होगी, तममें गया भी होगी। इस बाई को आने काग बुगई करने वाली की भी स्तिनी भलाई कर रही है।'

बाइसाह ने महाबाहिली बाई की बात मान कर दूत भेजा-जान दे दिया। कुछ दिनों पर इस गदना का ऐसा प्रभाव पड़ा कि जीवन एक दम बदल गया।

सारांग यह है कि आशा एक बड़ा गुण है। तिममें होगी, वह तममें कर पावन करेगा।

यह परमात्मा की प्रति के मान्य उदाहरण है। उन्हें मान्य भी निम्नर्द्ध आशा के अन्वेषण होगा।



प्रभु-प्रार्थना का प्रयोजन

[क]

की आदोरवर स्वामी हो ।

भगवान् स्वयम्भूत को यह प्रार्थना है । देखना चाहिये कि इन
को के साथ आत्मा का क्या सम्बन्ध है ।

प्रार्थना वही करत है । उसे किन्तु प्रकार की अभिलाषा होवे
है वह अभिलाषा किन्तु किन्तु के रूप में करने के है किन्तु

के रूप में करने के है किन्तु किन्तु के रूप में करने के है किन्तु

के रूप में करने के है किन्तु किन्तु के रूप में करने के है किन्तु

के रूप में करने के है किन्तु किन्तु के रूप में करने के है किन्तु

घन की ही तरह कई लोग पुत्र-सम्पन्नी विन्ता नामा करने के लिए परमात्मा की प्रार्थना करते हैं। विशेषतः स्त्रियों को पुत्र-लाभ की साजसा इतनी प्रवण होती है कि अनेक स्त्रियाँ साजियों के लोहे की रोटी खाने को तैयार होजाती हैं और भैरव-भबानी आदि आदि पूजती किरती हैं। वह समझती हैं—भबानीजी पुत्र दे देती हैं। लेकिन भैरव-भबानी पुत्र दे देते हैं, ईश्वर भी पुत्र दे देता है और साजिया भी; तो ईश्वर भबानी—भैरव और साजिया के, समान हो ठहरा !

बबोरपन में घेडा नहीं मांगा जाता। विवाह के परवाज ही यह साजसा पूरी करने की चाह होती है। मत्स्य यह है कि विवाह होने पर स्त्री से गरज न सरी तब परमात्मा का सहारा किया। अर्थात् परमात्मा को स्त्री से कुछ कहा माना। क्या यही त्रिसोफी-नाथ को समझना कहना है ?

कई लोग परमात्मा को प्रार्थना शारीरिक रोग मिटाने के लिए किया करते हैं। कनही समझ में भगवान् कोई डाक्टर या वैद्य जो कार्य एक मायावादी वैद्य से भी हो सकता है, उसके लिए तुम परमात्मा से प्रार्थना करते हो तो परमात्मा की महिमा नहीं समझते।

दुनियाँ की सभी चीजें मुख्य बाली हैं और परमात्मा अनमोल है। अनमोल परमात्मा में तुच्छ मुख्य की चीजों का वाचना करना क्या परमात्मा का अवमान करना नहीं है ? क्या यह उनके त्रिसोफी-नाथ को समझना है ?

१. यद्यपि कई हैं कि १५ विन्ता के नाम वैद्य, माहूर, राजा, २. ३. ४. ५. ६. ७. ८. ९. १०. ११. १२. १३. १४. १५. १६. १७. १८. १९. २०. २१. २२. २३. २४. २५. २६. २७. २८. २९. ३०. ३१. ३२. ३३. ३४. ३५. ३६. ३७. ३८. ३९. ४०. ४१. ४२. ४३. ४४. ४५. ४६. ४७. ४८. ४९. ५०. ५१. ५२. ५३. ५४. ५५. ५६. ५७. ५८. ५९. ६०. ६१. ६२. ६३. ६४. ६५. ६६. ६७. ६८. ६९. ७०. ७१. ७२. ७३. ७४. ७५. ७६. ७७. ७८. ७९. ८०. ८१. ८२. ८३. ८४. ८५. ८६. ८७. ८८. ८९. ९०. ९१. ९२. ९३. ९४. ९५. ९६. ९७. ९८. ९९. १००.

तुम गृहस्थ हो, तुम्हें पैसे की, पुत्र की और धन आदि सभी व्यापारिक वस्तुओं की आवश्यकता रहती है। लेकिन इन्हीं सब के लिए ईश्वर की प्रार्थना करना ईश्वर को पहचानना है। तुम उस बुद्धिवादी तरह, परमात्मा से एक ही बात क्यों नहीं माँग लेते, जिसमें इन सब के समावेश के साथ और भी बहुत-सी बातों का समावेश हो जाता है ? ऐसी क्या चीज है ? इसके लिए कहा गया है—

“मेरे काटो पुराकृत पाप” ।

जब परमात्मा ने पूर्वोपार्जित पापों के नाश की याचना कर ली तो और क्या याचना करना शेष रहा ? पाप ही मुख्य में बाधक है। वह न रहेगा तो सभी मुख्य बिना मुलाये आएंगे ।

गाड़ी चलने पर आप ही मालूम हो जाता है कि रास्ता मजबूत है या नहीं ? गाड़ी बेरोक चली जाए तो समझा जाता है रास्ता मजबूत है, अगर कहीं रुक-वट आ गई तो यह मान लिया जाता है कि रास्ता में गड़बड़ी है। इसी प्रकार शरीर रूपी गाड़ी में आत्मा विराजमान है। आत्मा की गति में रुक-वट आ जाए और सब काम बरत-वर्त होता रहे तो समझ लो कि पुण्य का उदय है। ऐसा न हो तो पाप का उदय समझो। आप अपनी गाड़ी की देखो, कहीं छटकती तो नहीं है ? आपके मन की सभी अभिलाषाएँ बराबर पूरी हो रही हैं ? नहीं !

तो गाड़ी छटकी है। रास्ता मजबूत करने का उपाय पाप काटना है। अगर समरपुत्र समाजा, परमात्मा की शरण लिये बिना, इस ‘नया’ उपाय से पापों को काटने का प्रयत्न करेगा तो पाप और बढ़ जाएगा ।



पाप जनक संयोग इष्ट होने पर भी अगर नहीं मिलते तो का नहीं पुण्य का उर्व्व समझो । उदाहरणार्थ—तीव्रतर क्रोध आदेश में आकर एक मनुष्य आत्म-घात करने के अभिप्राय में या विष स्वोन्नता है । उसे शस्त्र या विष मिल जाना पुण्य है या मिलना पुण्य है ?

‘न मिलना !’

क्रोध की आग के समान ही काम की आग भी प्रगंड होती । काम की आग संतप्त होकर ही पुरुष बेरमा आदि की अभिप्राय करवा है । अगर उसे उसकी प्राप्ति नहीं होती तो वह पुण्य के काम या पाप के कारण ?

‘पुण्य के कारण !’

अब विचार कर देखो कि परमात्मा को किधर बुलाना चाहो ? बेरमा आदि न मिलने के लिए भगवान् को बुलाना है या मि के उद्देश्य में ?

क्रोध से पागल हुए को आत्म हत्या के लिए शस्त्र न मिल पुण्य का प्रताप है । इसी प्रकार काम वासना का जागना । व्यभिचार की भावना होना भी आत्म हत्या से कम पाप नहीं । काम वासना की पूर्ति का साधन न मिलना भी पुण्य ही सम आर्धता में बड़ा है—

‘मदारा काटो पुरातुत पाप ।’

भगवान् ! नेगी कृपा हुए बिना पाप की वासना नहीं मिटती । पर मन में से काम वासना खली जाए, यही मुझसे चाहता हूँ ।

शाली नहीं हैं। यद्यपि यह ठीक है कि आत्मा इन सभी में जो सामर्थ्यवान् है, तथापि वह इन सब के चक्रुल में फँसकर आपको निर्बल अनुभव करता है। उसकी शक्ति कुण्ठित है। जब यह पाप की ओर प्रवृत्त हो जाता है। पाप में प्रवृत्ति होने पर एक मात्र उत्तम उपाय यह है कि परमात्मा में उन पापों के प्रभु होने के लिए प्रार्थना की जाय। ऐसा करने से पापों से बने इच्छा और शक्ति पराजित हो जायगी। प्रतिजना क देव में इच्छा का मेहनत युग है।

आपको विचार करना चाहिए कि पापों पुण्य पाप, बुराई, निरव मते ही ईश्वर का स्मरण और ध्यान करे, मगर ईश्वर की शक्ति के लिए नहीं है। कभी विचार होकर असत्य या पाप का भ्रम भी लेना पड़े, तब भी उसे मुरा से मानो। कम से कम की संकलता के लिए ईश्वर की सहायता तो न चाहो। काव्य मद-मोह आदि विचारों को दूर करने के लिए ही परमात्मा प्रार्थना करो। परमात्मा में कहो—‘प्रभो! मुझे अपने अपने विकार दूर करने की चिन्ता भग रही है। तू मेरी यह चिन्ता कर दे।’

मोह के प्रभाव में छोटी चीज भी बड़ी दीखने लगती है। बड़ी चीज भी छोटी दिखाई देने लगती है। कहावत है—‘मोह का चक्र और अंधता मीठी मोह अंधता नहीं। हम यह रूप-रंग इगारा चेटा बका गुणवान्! मुँह बन्दर जैसा ही क्यों न हो काच में देखकर कौन प्रमत्त नहीं होता? बन्दर भा काच में देख कर प्रमत्त होता है। यह मोह नहीं तो क्या है? मोह का

उमके मित्र ने पूछा—क्यों, फूल उठाये नहीं ? उसने उत्तर दिया—
नहीं, वह अपने काम के नहीं । वे तो हंगा देवी पर चढ़े हुए हैं ।
इस प्रकार अपनी बात छिपाने के लिए उसने अशुचिको हंगा देवी
बना दिया ।

इस दृष्टान्त में मोह के सिवा और क्या है ? ऊपरी मौर्ख
देखकर लुभा जाना और भीतर की असमन्वित पर विचार न करना
ही तो मोह है । दाध लगाने वाले को पहले ही मारूम हो जाना कि
वह अशुचि है, गुल्मदस्ता नहीं होना तो क्या वह दाध लगाता ?

‘नहीं ?’

अगर वह जान बूझ कर ऐसा करता तो मूर्ख गिना जाना
‘मगर संसार के लोग जानने-बूझने भी ऐसा ही करते हैं ।’

मंज-मूतर की कोपली रे अशुचि नखो मंठार ।

ऊपर से कमला लगी रे ता उपर मितार ।

हंगा देवी सम्प्रिया सो तुम देखो द्वय विचार जी ॥

आप लोग हंगा देवी की अशुचि को देखने हैं, लेकिन वह
अशुचि और कहीं से नहीं आई थी, मनुष्य शरीर की ही थी । ऐसे
शरीर के प्रति इतना मोह ! इस शरीर के आगिर लोग आमा को भा
भूल जाते हैं और परमात्मा से जो इसी के हेतु प्रार्थना करने हैं ?

भक्त जन कहते हैं—‘प्रभो ! मुझे और कुछ नहीं चाहिए । मैं
अपने पुराने पापों को काटना चाहता हूँ । मैं निर्वाण बन गया ।
त्रिभुवन की सम्पदा से क्या प्रयोजन है ?’

यही प्रभु की प्रार्थना का प्रयोजन है। आत्मशुद्धि के लिए नित की चंचलता के कारण उसमें उत्पन्न होने वाले विकारों को दूर करने के लिए और आत्मा का बल-वीर्य बढ़ाने के लिए ही परमात्मा की प्रार्थना करना उचित है। निष्काम भक्ति सर्वोपरि मानी गई है। मगर जब तक पूर्ण निष्काम दशा प्राप्ति नहीं होती तब तक भी कम से कम सांसारिक वासनाओं की पूर्ति और उसके साधन माँगने के लिए तो परमात्मा की प्रार्थना करना उचित नहीं है। आत्मा की शुद्धि ही जीवन का भेद्युक्त उद्देश्य है। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए परमात्मा का बल पाने के हेतु उसकी प्रार्थना करोगे तो आपका कल्याण होगा।

तलारा करते फिरते हैं । धर्म का मार्ग धीरों का है और लोगों में कायरता आ गई है । कायर लोग धीरों के धर्म को कैसे अपना सकते हैं ? मिहनत न करके मजे करने का मनोरथ रखना धीरों का काम नहीं है; और जब तक धीरता न होगी, ईश्वर का स्वरूप भी नजर नहीं आएगा ।

‘जब भगवान् ही दुःख का नारा कर देता है—दुःख निकलता है—तो इसे क्या करना है ? हम उद्योग करने की सटपट में क्यों पड़ें ? सूर्य हो तो दीपक जलाने की क्या आवश्यकता है ? ऐसा कहने वाले, पर प्रमादशील व्यक्ति दुःखों से किस प्रकार मुक्त हो सकते हैं ?

परमात्मा से सभी अपना-अपना दुःख दूर कराना चाहते हैं, प्रार्थना भी इसी लिए करते हैं, लेकिन जब तक वह ज्ञान बिना थाय कि दुःख क्या है और किन दुःखों का मारा करने के लिए प्रार्थना में परमात्मा से कहा गया है, तब तक काम नहीं चल सकता ।

सूर्य तो प्रकाश करता ही है, मगर प्रकाश को ग्रहण करने के लिए आपको आँखें खोलने की आवश्यकता है या नहीं ? कदाचित् कहने लगोगे—सूर्य प्रकाश करने वाला है ही, फिर हमें आँखें खोलने की क्या आवश्यकता है ? वह हमारे आँखें न खोलने पर भी हमारे लिए प्रकाश क्यों न करे ? यह स्थान बुद्धिमत्ता नहीं है ।

ईश्वर दुःख नाश करना है, हम स्वयं में भी यही बात समझ लेना चाहते हैं । ईश्वर अपना काम करता है, आप अपना काम करें । सूर्य प्रकाश करता है मगर हम भी अपना आँखें खोलें । कहते हैं,

कदाचित् सूर्य का प्रकाश अन्तरात्मा को प्रकाशित कर सकना होता; सूर्य के प्रकाश से अन्तरात्मा के पाप धुल जाते होते, तो संसार में चोरी-जारी न रहती, पुलिस और कचहरियां भी न रहती और न मरसंग या धर्मोपदेश की आवश्यकता हो रहती। लेकिन सूर्य में यह काम न हो सका। घृत मन को, येरकूफ इन्द्रियों को और मिथ्याचारिणी बुद्धि को निवृत्त करके इन पर विजय पाने का काम सूर्य में नहीं हुआ। सभी परमात्मा से प्रार्थना करने की आवश्यकता है कि—‘हे भगो ! यह काम तेरे भिन्न और कोई नहीं कर सकता।’

भक्त कहते हैं—‘भगो ! मेरा हृदय हो वह भूमिका है, जिस पर दुःख का विकराल विषपुच्छ उगता, अद्भुत होता और फूलना फलता है। मगर मैंने अभी तक यह भी न जान पाया था। ज्ञान का अभिमान तो मुझे बहुत था, मगर अपने हृदय का हान भी मुझे मालूम नहीं था। मैं बाहर के पदार्थों से ही दुःख देखा करता था, मगर तेरा दर्शन पाकर मुझे निश्चय हो गया है कि दुःख का बीज मेरे अन्तःकरण में है—बाहर नहीं।’

मित्रो ! क्या अन्तरात्मा के विकारों का नाश करता अपना कर्तव्य नहीं है? आप गृहस्थ हैं, इसलिए गृहस्थों के दुःख से घबराकर भी शान्ति चाहते हैं, लेकिन बाह्य शान्ति न चाहकर आन्तरिक शान्ति चाहो। आन्तरिक शान्ति हो अमली, परिपूर्ण और शाश्वत शान्ति है। आन्तरिक शान्ति प्राप्त होने पर मनुष्य की सकल काम-नार्थ सफल हो जाता है, त्रिभोक का समरदा तामी बन जाती है।

बाह्य विभूति, श्रुति शिष्ट सम्पदा कुटुम्ब-परिवार आदि शान्ति और सुख के मान जान वाले साधन पारमार्थिक शान्ति नहीं

शान्ति से बैठने वाला, न माँगने पर भी भूखा नहीं रहता, तो क्या ईश्वर के घरों में बैठ कर भूखे रहोगे ? संनोष रख कर कल्याण-कामना करोगे तो अक्षय कल्याण होगा। गीता में कहा है—

‘कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।’

मनुष्य को कर्त्तव्य करने का अधिकार है, फल माँगने का अधिकार नहीं है। कर्त्तव्य करो और फल की चाह से बचो, तो सभी शान्ति मिलेगी।

ससार के अन्याय व्यवहारों की तरह धर्मभी व्यवहार बन गया है। लोग चाहते हैं—इपर धर्म करें और इपर तत्काल फल मिल जाय। क्या धर्म किस काम का ? ऐसे ही एक कवि ने कहा है—

मने रोटला जायो राम, जदि मजूँ तमारो नाम।

चार अघेरी चार सघेरी चार दोपहरी बारा ॥

एटला माही चूक पड़े तो मेलो याये मारजा ॥

छाड़को तीरथ राबड़ो तीरथ तीरथ धुगरी बाँकरा।

बिचले बिचले रोटलो तीरथ बड़ो तीरथ अंग कदा ॥

इस प्रकार की सुदृढ़ भावनाओं के साथ की हुई प्रार्थना सार्थक नहीं होती। प्रार्थना का प्रयोजन महान् है, यह है, बख्श दे। मानव-जीवन के चरम साध्य माश्रुत मुक्ति के लिए ही परमात्मा की प्रार्थना करनी चाहिए। जो इस निर्मल और निर्बिकार भाव से प्रभु से प्रार्थना करते हैं, समस्त कल्याण उन्हें सौजते हुए आते हैं।

परमात्मा की मदद इतनी अधिक है, कि प्रत्येक ईश्वर प्रेमी उपाय माझतवार करना चाहता है, कभी-कभी भक्त जनों के हृदय में

में अन्तर रहता है या नहीं ? मूर्ख मनुष्य केवल दीम्बने वाली मौजूदा चीज को ही देखता है और बिद्वान् पुरुष भूत, भविष्य और वर्तमान सभी को जानता है। सात भौयरों के भीतर बैठा हुआ भी ज्योतिषी चन्द्र-सूर्य-ग्रहण का जो समय बतला देता है, उसी समय ग्रहण होता है। उसने ग्रहण को चर्म-पत्रों में नहीं देखा बरन् विशाध्ययन में हृदय के जो नेत्र खुल गये हैं, उनसे देखा है। इन नेत्रों का जब अधिक विकास होता है—साधना के द्वारा आत्मज्ञान हो जाता है तब परमात्मा का साक्षात्कार हो जाता है।

‘मा विद्या या विमुक्तये’ अर्थात् जिस विद्या से सब प्रकार के बन्धन कट जाते हैं, वही मर्मा विद्या है। इस विद्या की तरफ ध्यान दिया जाय तो धारीक में धारीक चीज भी दिखाई देने लगेगी। आत्मा के सब आवरण हट जाएंगे। बन्धन कट जाएंगे। आत्मा पूर्ण और मुक्त हो जायगा। हम स्थिति में स्वतः भान होने लगेगा कि—‘यः परमात्मा मयाहं।’ अर्थात् मैं ही परमात्मा हूँ।

आत्मा में ईश्वर का प्रकाश तो मौजूद है, लेकिन थोड़ी भूल हो गई है। भूल यही कि जिस ओर मुँह करना चाहिये, उस ओर मुँह न करके विपरीत दिशा में चर गइया है।

एक सूर्य पृथ में उदित हुआ है। पर व्याक्त पञ्चम के ओर मुँह करके खड़ा है। उनका परछाई पश्चिम में पड़ रहा है। प्रपन्ना परछाई देखकर उद व्याक्त उस पकड़ने दीड़ता है : ज्या-ज्या व

है कि तृष्णा कभी नहीं मिटेगी। परन्तु आत्मा एवं परमात्मा दृष्टि दोगे तो माया तुम्हारे पीछे उसी प्रकार दौड़ेगी, जिस प्रफार की ओर दौड़ने से परछाई पीछे-पीछे दौड़ती है। माया के पीछे गने से तृष्णा कभी नहीं मिटती। इसके लिए एक उदाहरण जिए—

एक मनुष्य किसी सिद्ध महात्मा के पास पहुँचा। महात्मा ने कहा—‘मनुष्य शरीर सुलभ नहीं है। धर्म किया करो। धर्म का पालन न किया तो शरीर किम काम का आगत मनुष्य ने कहा—‘हाराज। घर में तो बाल-बच्चे हैं। उनका पालन-पोषण करना पड़ता है। संसार की स्थिति विषम से विषमतर होती जा रही है। रोज़ दिन दौड़ धूप करने के बाद भर पेट खाना मिल पाता है। कहीं इ आजीविका का प्रबंध हो जाय—घर का काम चलने लगे तो न ध्यान करूँ ?

महात्मा ने पूछा—‘तुम्हें प्रतिदिन एक रुपया मिल जाय तब तो भगवान् का भजन किया करेगा ?

आगत मनुष्य ने प्रसन्न होकर कहा—‘ऐसा हो जाय तो कहना क्या है ? फिर तो मैं ऐसा भजन करूँ कि ईश्वर और मैं एक-मेका जाऊँ !’

महात्मा ने उसका हाथ ले एक का छंक उस पर लिख दिया। उसे किसी भी प्रकार प्रतिदिन एक रुपया मिल जाता था। एक रुपया

काम खूब बढ़ा लिया । कहीं कोई दुकान, कहीं कोई कारखाना चलने लगा । नतीजा यह हुआ कि उसे तनिक भी कुर्मत न मिलती । स्त्री कहने लगी—घर में अच्छे दिन आये हैं तो मेरी भी कुछ सुध लगे या नहीं ? स्त्री के ऐसे आप्रद मे उसके लिए भी साभूपण बनने लगे । उसके रदन-मदन का पैमाना (Standard) भी ऊँचा हो गया । विवाह-सगाई भी ऊँची हैसियत के अनुसार हो देने लगी ।

कुछ दिनों के पश्चात् फिर उसे महात्मा मिले । बोले आज कल तुम्हें दस रुपया रोज मिलते हैं, अब क्या करता है ? अब भी नू भजन नहीं करता !

उसने उत्तर दिया—‘दीनदयाल ! खूब स्मरण दिलाया आपने आपने मुझे दस रुपया रोज पाने की जो शक्ति दी है मैं उसका दुरु-पयोग नहीं करता । आप हिसाब देख लीजिए, इतने से तो कुछ होता नहीं ! संसार में बैठे हैं । गृहस्थी का भार सिर पर है । इज्जत के माफिक ही सध पास करने पड़ते हैं ।’

महात्मा बोले—‘मैंने दस रुपये रोज का प्रयंच बढ़ाने के लिए दिये थे या घटाने के लिए ?’

उसने कहा—‘करुणानिधान ! गृहस्थी में प्रयंच के सिवाय और क्या चारा है ? प्रयंच न करें तो काम कैसे चले ?’

महात्मा—‘फिर नू क्या चाहता है ?’

बह बोला—‘आपकी सेवा । आपकी सेवा हो आज और इस
आमरनी बहुत आज तो जीवन मारना हो ।’

महात्मा ने उसके हाथ पर एक बिन्दु और बड़ा कर भी हाथ
टोका कर दिये । अब वसे प्रतिदिन गौ, महीने में तीन हजार और वस
अस में छत्तीस हजार करने मिलने लगे । इनकी आमरनी होने से
वसका काम धन और बढ़ गया । सोढ़ा वर्षों और ताँगे सौदने को
बहने कदाचित् अबकास मिलने की ओ संभावना भी बह भी न
आती रही, बह इनकी कमरों में चँस गया कि वसे महात्मा को न
निष्ठावाना भी कहित हो गया ।

आज के जीवन की आत्मकल्याण में दिनरा समय मरने
रहने हैं । वह समयमें हैं मानों हवाई मृत्ति ही अभावा है । गरीब
कोर आमीनों की वो मित्र मित्र मृत्तिवों हैं ।



प्रार्थना

ॐ महावीर नमूँ बर नासी :

बड़ भगवान महावीर की प्रार्थना है। प्रार्थना आत्मा की आनन्ददयिनी वस्तु है। प्रत्येक प्रत्त्ये और विरोधः मनुष्य को प्रार्थनामय जीवन बनाना आवश्यक है। त्यागीर्ग पानी साधु-संतों को हो नहीं, किन्तु पवित्र में पवित्र जीवन बिताने वालों को भी परमात्मा की प्रार्थना करके जीवन को पवित्र और पवित्रतर बनाने का अधिकार है। संसार में जिसे पानी कड़ कर लोग छुड़व नमनते हों, ऐसे घोर पानी, गो, माछर, स्त्री और बालक के घावक, घोर, लवारी, जुझारी और बेरयागामी अथवा पवित्र, दुराचारिणी और दुष्ट करने करने वाली स्त्री को भी परमात्मा की प्रार्थना का अधिकार है।



परमात्मा व्यापक है ।

भी आदोरबर स्वामी हो, प्रणमूं तिर नानी तुम मली ।

यह भगवान् ऋषभदेव की प्रार्थना है । प्रार्थना मेरा नित्य का विषय है । अगर एक प्रार्थना करने का कार्य भी अन्य एक-दूसरे सेना तक पहुँचा दिया जाय तो 'एकहि मध्ये सब मध्ये' की कहावत के अनुसार अनुग्रह के समस्त मनोरथ प्रकट हो सकते हैं ।

प्रार्थना से किन्हीं शक्तों के और किन्हीं प्रयोजनों से प्रार्थना करने चाहिए । हम देवद से बहुत कुछ कहा जा सकता है । लोगों के सरकार और आचार्य ज्ञान-ज्ञान होने से सब भी उनकी ज्ञान-ज्ञान है किन्हीं कोई बातें से भी होना है जो मन्त्रन मय से मन्त्रों को रखती है । यह इरादा — सभी 'मेरे भक्त' मन्त्र । इस 'मेरे भक्त' कहेंगे । लक्ष्मी के मन्त्रों बाँटें सब को रखती हैं और सब के मन्त्रों को नहीं रखती तो मन्त्रना कहेंगे के मन्त्र

करके आप हमें अपना शिष्य बनाइये ।

गुरु को शिष्य का लोभ नहीं था । अतएव उसने कहा—आप को चेला बनना सरल मालूम होता है पर मुझे गुरु बनना कठिन जान पड़ता है । इसलिए पहले परीक्षा कर लूँगा ।

आप लोग रुपये बजा-बजा कर लेते हैं और यही हंडियाँ टोक-बजा कर लेती हैं । ऐसा न करने से बाद में कभी-कभी पड़ता है और उपालम्भ सहना पड़ता है । इसी प्रकार चेले सराप निकले तो गुरु को उपालम्भ मिलता है । यों तो भगवान् का शिष्य बमाली भी सराप निकला, परन्तु पहले जाँच पड़ताल कर लेना आवश्यक है ।

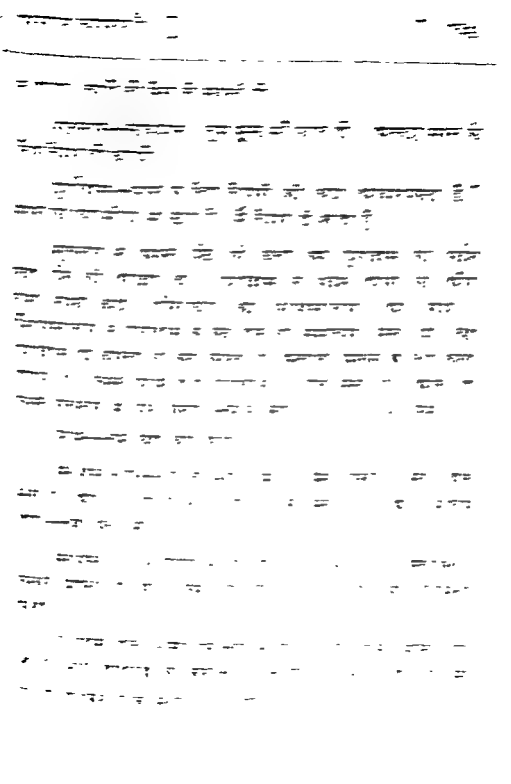
ऐसा विचार कर गुरु ने उन दोनों में कहा—‘पहले परीक्षा कर लूँगा, फिर शिष्य बनाऊँगा ।’

शिष्य—जी, ठीक है । परीक्षा कर देंगे ।

गुरु ने कोठरी में जाकर एक मायामय कटून बनाया और आकर चेने से कहा—उसे ले जाओ और ऐसी जगह मार दो, जहाँ कोई देखता न हो ।

पहले चेने ने कटून दाढ़ में लिया और सोचा—‘यह कौन का काम है, ऐसी जगह बदन है, उसे पकड़ना है—कोई देखता और मारना तो करना ही है, कोई जो न मारता है नहीं ।’
चेनेर बड़ कटून को मारने आया, तब उसने कहा—‘मैंने कहा था—‘ले जाओ, जहाँ कोई देखता न हो ।’
चेने बोला—‘ले जाओ, जहाँ कोई देखता न हो ।’
चेने बोला—‘ले जाओ, जहाँ कोई देखता न हो ।’





न होगा। आदो मो गिर से गकती हो।

गुलनार—मायधान ' तुम मुझे मो बतने हो ! अफ्फा मरने के लिए नैयार हो जाओ।

दुर्गादाम—मरने के लिए नैयारी की क्या आवश्यकता है ? मरने का यह सौका भी ठीक है। मैं तैयार ही मर रहा हूँ।

गुलनार ने अपने घंटे को बुला कर दुर्गादाम की गर्दन घड़ा देने की आज्ञा दी। दुर्गादाम ने गर्दन आगे की और उसी समय वहाँ खौरंगजेय का सिपहसालार आ गया। सिपहसालार ने दुर्गादाम के पैर होने का समाचार सुना था। यह दुर्गादाम की धीरता की कद्र करता था, अतएव मिलने के लिए चला आया था। उसने घेगम और दुर्गादाम की बात सुनी थी। आते ही उसने गुलनार से प्रश्न किया—घेगम साहिब ! आप यहाँ कैसे ?

घेगम—तुम यहाँ क्यों आये ?

सिपहसालार—यह तो मेरा काम है। मैंने तुम्हारी सप बातें सुनी हैं। अब तक दुर्गादाम की धीर ही समझता था, अब मालूम हुआ—वह बली भी है।

सिपहसालार ने दुर्गादाम को कारागार से बाहर निकाला। उसकी प्रशंसा की और उसे जोधपुर खाना करने की व्यवस्था कर दी।

दुर्गादाम बोले—सिपहसालार साहब ! आप मुझे मुक्त कर रहे हैं, मगर बादशाह का खयाल कर लीजिए। ऐसा न हो कि मेरे कारण आपकी दुःख सहन करना पड़े।

न होगा । आगे से फिर से मरने हो ।

दुम्नार—महाशय ! तुम मुझे मों कहने हो ! अन्तर्मात्र के
भिर मैदा हो जाओ ।

दुर्गाशम—मने के भिन्न मैदा की क्या आवश्यकता है ?
मने का यह मौका भी ठीक है । मैं तैयार हो रहा हूँ ।

दुम्नार ने अपने मने को चुना कर दुर्गाशम की गर्दन
पर से की काटा था । दुर्गाशम ने गर्दन कागे की और
उसी समय वहाँ सौराज्य का निरन्तर आ गया ।
निरन्तर ने दुर्गाशम के पैर होने का समाचार सुना था । वह
दुर्गाशम की वीरता की बहुत प्रशंसा था, अतएव मिलने के भिर चला
आया था । उन्ने देगल और दुर्गाशम की बात सुनी थी । आगे ही
उन्ने दुम्नार से प्रश्न किया—देगल सचिवा ! क्या यहाँ कैले ?

देगल—तुम यहाँ क्यों आये ?

निरन्तर—यह ठीक मेरा काम है । मैंने तुम्हारी सभ बातें
सुनी हैं । अब तक दुर्गाशम की वीर ही समाचार था, अब मातुल
हूँ—बहुत बली भी है ।

निरन्तर ने दुर्गाशम की करागर से बाहर निकाला ।
उन्ने प्रशंसा की और उसे जोरुर खाना करने की व्यवस्था
कराई ।

दुर्गाशम बोले—निरन्तर माया ! क्या मुझे सुन्न कर
गये हैं, अगर बाहराह का सफल कर सौलिर ! ऐसा न हो कि मेरे
जाएल ऊपर दुःख सहन करना पड़े ।

ਸਰਗ ੨੨ ੨੨

ਸਰਗ ੨੨ ੨੨

ਸਰਗ ੨੨ ੨੨

ਸਰਗ ੨੨ ੨੨

ਸਰਗ ੨੨ ੨੨

ਸਰਗ ੨੨ ੨੨

ਸਰਗ ੨੨ ੨੨

ਸਰਗ ੨੨ ੨੨

दुर्गादाम कारागार में बन्द कर दिया गया। चौहानों की सहायता से गुजरात ने जयपुर की लड़ाई में दुर्गादाम को बेगम का हाथ मिलाने का प्रयत्न किया। बेगम उस पर मोहित हो गईं। बेगम को जब दुर्गादाम के कैद होने का समाचार मिला, तो उसने अपना बहुत दिनों का मनोरंजन पूर्ण होने का आशा हुई। उसे आश्चर्य के साथ जानकर कहा—'जहाँ-तहाँ' कैदी दुर्गादाम को जाने देना चाहते हैं। उसे उसका कैदना में बसाना चाहती हूँ। मैं ही अर्थात् समझूँगी, वही सच्चा मन देखूँगी।'

बादशाह बमकी बात टाल नहीं सका। गुजरात की प्रमत्तता पर न रहा। बेगम रात्रि के समय अपने लड़के को लेकर गईं, जहाँ दुर्गादाम कैद था। लड़के को बाहर खड़ा रख कर दुर्गादाम को बतला दिया। उसने हाव-भाव दिखाने हुए दुर्गादाम से कहा—'आप बहुत दिनों बाद मेरी मुलाक़ात कर रहे हैं। अब आप मुझे बतला देंगे।' बेगम ने कहा—'आपने मुझे क्यों बतलाया है? मैं तो जानती हूँ कि आपने मुझे क्यों बतलाया है।' बेगम ने कहा—'आपने मुझे क्यों बतलाया है? मैं तो जानती हूँ कि आपने मुझे क्यों बतलाया है।'

बादशाह ने बेगम को बताया कि वह जानती है कि दुर्गादाम के जाने के लिए वह बहुत दिनों से तैयार थी। बेगम ने कहा—'आपने मुझे क्यों बतलाया है? मैं तो जानती हूँ कि आपने मुझे क्यों बतलाया है।'

दुर्गादाम ने गुजरात से कहा—'हाँ, मुझे भी जानने दो।' बेगम ने कहा—'आपने मुझे क्यों बतलाया है? मैं तो जानती हूँ कि आपने मुझे क्यों बतलाया है।'



यह पंच नमस्कार मंत्र समस्त पापों का विनाश करने वाला और सब मंगलों में श्रेष्ठ मंगल है ।

मंत्रों में कितनी शक्ति होती है, यह बात तो मंत्रवेत्ता ही जानता है । आचार्यों ने कहा है—'अचिन्त्यो हि मल्लिमयौषधीर्ना प्रमदं अर्थात् रत्नों मंत्रों का तथा औषधियों का प्रभाव इतना अधिक कि वह विचार में बाहर है । जब माध्वाण्य मंत्रों का प्रभाव ही अचिन्तनीय है तो नमस्कार मंत्र जैसे महामंत्र के और सर्वोत्तम मंत्रों के प्रकट पभाव का मन के द्वारा किम प्रकार चिन्तन किया जा सकता है ? इस मंत्र में अपूर्व आध्यात्मिक शान्ति प्राप्त होती है । संसार के अन्यान्य मंत्र इसी लोक में किंचित् लाभ पहुँचाते हैं, पर नमस्कार मंत्र इस भव और परभव दोनों में लाभ कारक है । इस मंत्र आत्मा के काम, क्रोध आदि आत्मिक विष का नाशक है और स्वाभाविक गुण रूप अनन्त सम्पत्ति का दाता है । इसके प्रभाव में आत्मा समस्त विकारों से विहीन बनता है । इस मंत्र की मूर्ति से मनुष्य को तो बान दूधरी, पशु भी देवत्व प्राप्त करता है ।

नमोकार मंत्र का पहला पद 'नमो अग्निहोत्राय' है । महापुरुषों ने जैन धर्म का स्वरूप व्यापक बनसाया है । जैनधर्म किसी एक जाति, समाज या व्यक्ति का धर्म नहीं है जो इसे धारण करना है, धर्म का यह धर्म है । इसके सभी निदान बहुत व्यापक, उपकारक और कल्याणकारक हैं । जो इस धर्म का पालन करे, वही जैन या जैन-वर्मानुयायी है । प्रकृत नमस्कार मंत्र में किसी व्यक्ति विशेष को नमस्कार नहीं किया गया है । इसमें गुण पूजा का आदर्श पतनाया गया है । महावीर, पार्श्वनाथ आदि नाम बाद में हैं, पहले तो अस्व में आश्रित-मार्ग है । यह नाम उन महापुरुषों के हैं, जिन्होंने जैनधर्म

अनुसरण करके अपनी आत्मिक दशा परम उन्नति पर पहुँचाई । 'अरिहन्' कोई नाम विशेष नहीं है, बड़ तो आध्यात्मिक विकास में उन्नत अवस्था का परिचायक मुख्यवाचक शब्द है । आत्मा के गन्तव्य होने में ही जो श्रु कर देता है और जो सर्वज्ञता और प्रेमसिद्धि प्राप्त कर लेता है, वही अरिहन् है । ऐसे अरिहन् भगवन्त में ही पहले पद में जनन किया गया है । जिसने ऐसी उन्नत अवस्था तक का ली है, उसका नाम चाहे ब्रह्मा हो, विष्णु हो, महेश हो, बुद्ध हो, बड़े बड़े इन्द्र, परमेश्वर आदि कुछ भी कहा जाय । जैन को नाम में कोई प्रयोजन नहीं, बड़ गुरुओं को मानता और पूजता है । अनेक जैनवादी ने इस भाव को अपनी श्रुतियों में स्पष्ट रूप में प्रकट भी कर दिया है । प्रसिद्ध तार्किक अकलकदेव कहते हैं—

यो विश्वं वेद वेद्यं जननजल निर्धर्मज्ञिनाः पारस्परिवा,
पौर्वापर्याविरुद्धं वचनमनुपम निष्कलङ्क यदीयम् ।
तं वन्दे साधुश्रुतं सकलगुणनिधि स्वभावशेषद्विपन्तं,
हुतं वा बर्द्धमानं शतदलनित्यं केरावं वा शिव वा ॥

अर्थात्—जो समस्त ज्ञेय पदार्थों के ज्ञाता अर्थात् सर्वज्ञ है, जिसके वचनों में पूर्वोपर विशेष नहीं है और निर्दोष हैं, जो समस्त आत्मिक गुरुओं की निधि इन गया हैं, जिसने रागद्वेष आदि दोषों का ध्वंस कर दिया है—वैतराग है, इसका नाम चाहे कुछ भी हो—हुत हो, बर्द्धमान हो, ब्रह्मा हो, विष्णु हो, शिव हो—वही साधु श्रुतों द्वारा वन्दनीय है । इसे मैं वन्दन करता हूँ ।

आचार्य हेमचन्द्र ने कहा है—

एव तत्र समये यथा तथा, योऽस्ती सोऽन्यमिव यथा तथा ।



अन्तरतर की प्रार्थना

भीमनिमुमन साधवा !

भगवान् मुनिमुमननाथ की यह प्रार्थना है। देवता बलि
मन्त्र अपने मनो को भगवान् के समक्ष प्रार्थना द्वारा भिन्न
निवेदन करने हैं। इस विषय को लेकर भिन्न भी भिन्न
साधना, उतना ही अधिक आत्मन्द अनुभव होगा। आत्म
बन्धु जितने अधिक समीप होगी, उतने ही भगवान् की अधिक
भिन्नता। समुद्र की शीतल तरंगों प्रत्यक्ष के पंख साध में तब दुः
आनिदायक मार्ग होनी है तो अधिक मज्जित होने पर ही
अधिक शक्ति बढ़ेवाली है। पुनः का मौर्य अरुद्धा लगता है।
दृष्ट जब अधिक मज्जित होता है तो उसकी मृगयू और
आत्मन् देने वाली होती है। इन भौतिक उदाहरणों में ही
मनीषिन् मनस्वी ज मज्जित है कि परमात्मा की प्रार्थना

यह सोच कर लड़की कथा सुनना छोड़ कर आई थी।
 म बोली—'हाँ, आत्र काहे का शक बनाया है?' और वह
 'विद्या, बैंगन तो है ही।' साथ में एक और बना रही
 माया की बात में लड़की को कुछ समझी हुई। यमन पूरा—
 'बैंगन बनाये तो नहीं है?' माया के नारी करने पर लड़की ने
 'हाँ अब बैंगन बन बनाया।' मैं अभी कथा सुनकर आई
 पिता की ने आत्र बैंगन की लूट लिखा की है, जयन्ति मन
 सुनने वालों को बैंगन नहीं खाने पर उपदेश दिया है। मन ने
 बात की समझना की है। अब पिता की भी बैंगन नहीं खाने।
 दुसरी बरकाती बना मिला।'

लड़की को बात सुन कर मैं ने बैंगन का शक नहीं बना
 बनाई कथा समझ पर वह आई। औरत बन बैंगन का
 और बरकाती नहीं मिला मिला, बैंगन बन नहीं आई। मैं
 न बस कर लड़की ने पूछा—'कहाँ? आत्र बैंगन की बना
 नहीं करे?'

माया ने कहा—'हाँ अब बैंगन तो है, मगर आत्र बन नहीं
 बना नहीं बना है।'

माया : लड़की का।

माया : लड़की का।
 माया : लड़की का।

माया : लड़की का।
 माया : लड़की का।

मंदा-फोड़ होता है, इसके लिए एक उदाहरण देता हूँ।

दो मित्र व्यापार के निमित्त विदेश गये। दोनों ने धनोपार्जन के लिए यथाराज्य उद्योग किया। पर सन्ध्या में एक को अन्धा हो हुआ और दूसरे को लाभ नहीं हुआ। जिसे लाभ नहीं हुआ। उसने सोचा—उद्योग करते-करते थक गया, फिर भी कुछ लाभ नहीं हुआ। अब देश को लौट जाना ही बेवकूफ है। उसने अपना विचार अपने मित्र के सामने प्रकट किया। मित्र ने सोचा—यहाँ काफी आमद हुई है और व्यापार में इतना उत्साह है कि मैं नहीं जा सकता। लेकिन कुछ रकम अपने मित्र के साथ क्यों न ले दूँ, जिससे स्त्री को संतोष हो जाय। लेकिन यह रुपया कहाँ से फिरेगा? यह सोच कर उसने एक लाल खरीद और अपने मित्र को देकर कहा—भाई, चाहें हो तो जाओ और यह लाल भी भाभी को दे देना। कह देना कि यह लाल कीमती है। इसे मरना कर रखो। कुछ दिनों बाद व्यापार समेट कर मैं भी आ जाऊँगा। लाल पहुँचने से तुम्हारी भाभी को संतोष होगा।

मित्र का दिया लाल लेकर दूसरा मित्र स्वदेश की ओर रवाना हुआ। रास्ते में धमकें मन में घेड़मानी जा गई। अनुपम दुर्घटना का पुत्र है। कब कौन-सी दुर्घटना उसे बिचरा कर देती है, नहीं जा सकता। उसे विचार आया—लाल कीमती है और मित्र अकेले में ही मुझे दिया है। देते-लेते किसी ने देखा नहीं है—क्या गवाह साम्य रहा है। अब घेड़मानी किये बिना आता नहीं, यह प्रयत्न करके देख लिया है। इमानदारी स्वयं इतनी घेड़मानी है कि इमानदार को भूख मरना पड़ता है ऐसी मुँहजली इमानदारी

घर घाटो ? देहतर बही है कि हाथ में आये उस लाज को हजम
कर लिया जाय । थोड़ा-सा झूठ धोलना पड़ेगा । कह दूंगा—मैंने
त दे दिया है ।

सोग मोचते हैं—पाप केवल जीव-हिंसा करने में ही है । झूठ-
घट तो लोगों की निगाह में मानो पाप ही नहीं हैं । झूठ-कपट
बौन-सा महा-आरम्भ-समारम्भ करना पड़ना है ! लाल के लिए
कमाने वाले उस व्यक्ति ने भी यही सोचा होगा । धनोपार्जन करने
अधिक आरम्भ-समारम्भ करना पड़ेगा और थोड़ी-सी जीभ
लाने में आरम्भ-समारम्भ के दिना ही धन मिल रहा है ! फिर ऐसे
ते धन का पालन क्यों न किया जाय ? बौन पाप में पड़ कर—
आरम्भ करके धन कमाने का भ्रम करे !

ऐसा ही कुछ मोच कर वह अपने घर पहुँचा । उसने लाल
ने ही पास रख लिया मित्र की स्त्री को नहीं दिया ।

मित्र की पत्नी को उसके लौट आने का समाचार मिला । उसने
कहा—वह तो अपने मित्र का कुशल-समाचार कहने आये नहीं,
रुफ़े जाकर पूछ आने में ही क्या हानि है ? वह पति के मित्र
घर पहुँची । पूछा—आप अकेले ही क्यों आ गये ? अपने मित्र
साथ नहीं लाए ?

उसने कहा—वह दश हों लोभो है । उसमें कमाई का लोभ
था ही नहीं है । खूब धन कमाया है, फिर भी नहीं आया ।

स्त्री ने पूछा—क्यूँ कमाया है वो कुछ भेजा नहीं ?

वह—एक, वह लोभो क्यूँ भेजेगा ? कुछ भेजे नहीं भेजा
मैंने

मनुष्य जब एक पाप करना है तो उसे खिपाने के लिए साँ पाप करने पड़ते हैं। कदावन है—निमका एक पैर सिमड जाग है वह लुडकना हो जाता है।

साँ मन्तोष करके बैठ गई। उमने सोचा—कुछ नहीं दिया तो न सही, कुगल पृथक है और समाई कर रहे हैं तो आसिर में भी जायेंगे ? अन्त में तो घर रही है।

कुछ समय व्यतीत होने पर वह भी अपना धन्या समेट कर घर लौटा। स्त्री ने कहा—सकुगल तो रहे ? आप मुझे तो एका ही भूल गये ! अपने मित्र के साथ कुछ भी न भेजा ?

पति ने कहा—भूल कैसे गया ? भूल जाना तो तुम्हारे लिए लाल क्यो भेजता ?

पत्नी--बोन-सा लाल ?

पति--क्यो, मित्र के साथ भेजा था न ? तुम्हें मिला नहीं वह !

पत्नी--नहीं, लाल तो मुझे नहीं दिया। वह तो आपके समाचार कहने के लिए भी नहीं आये। मैं खुद उनके घर गई। कुगल समाचार पूछे। उन्होंने यही कहा कि आपने उनके साथ कुछ भी नहीं भेजा।

पत्नी की बात सुनकर वह समझ गया कि मित्र के मन में वैदमानी आ गई। लाल उसी ने हजम कर लिया है। मान का होने ही वह उसके घर गया। उसे आया देख पहले मित्र के चेहरे का रंग पड़ गया। लेकिन अपने को सम्भाल कर उसने पूछा—अन्धा, आप आ गये ?

जो हों वह घर वह बैठ गया। बुझा-मृत्तान्त के पक्षानु-
क्रमे हुए—मैंने मुझे जो सारा दिया था, वह क्यों है? उसने
कहा—वह तो जाने हो मैंने तुम्हारी पत्नी को दे दिया।

तुमने मे कहा—वह तो पत्नी है, मुझे दिया ही नहीं।

प्रथम मित्र—भूटे हैं। मित्रों का क्या भरोसा! न जाने किसी
को दे दिया होगा और मुझे खोर बनानी है!

इस प्रकार वह कम बह हाजरे लगा—अपनी स्त्री को तो
मेरे नहीं और मुझे खोर, घरेमान बनाने हो! ऐसा जानता तो मैं
क्या हो क्यों? शमशेर, जो मुझसे अब तक के विषय में कभी
हल पूछा।

भूटा आदमी चिल्लाना बहुत है। उसका रंग-रंग देखकर
साथ वाले मित्र ने बोला—वह साल भी इज्जत कर गया और ऊपर
मेरी पत्नी को तुलाया-बिंदी प्रकट करना चाहता है और मुझे
बमर्दे दे रहा है।

शमशेर वह हाजिर के पास गया और सारा किस्सा सुनाया।
हाजिर ने पूछा—तुमने किमके सामने लाल दिया था? उसने
कहा—मैंने हवल विधान पर ही दिया था। किमी को गवाह नहीं
बनाया। हमारी इस न्यायोविधि से हाजिर को उसके कथन पर
विधान हो गया। हाजिर ने मन्तवना देते हुए कहा—मैं समझ
रहा हूँ। तुम मन्तव्य हो। मैं तुम्हारा लाल दिलाने का प्रयत्न करूँगा।
क्याचिन्ना न निजा तो तुम्हारे इज्जत अवश्य बाधित होगी।
तुम अपने घर जाओ

तो लगवाते हैं ? हम लोगों ने तो क्या, हमारे बाप ने भी कभी
यत्न नहीं देखा । हम तो हमके मुत्ताहिसे और कुछ लीम-लाजय में
हम का गवाही देने आये हैं ।

अमत्य किन्ना यत्नहीन होता है ! मृत्यु के सामने अमत्य के
देर उमड़ने देर नहीं लगती । अस्त्य में धैर्य नहीं, साहस नहीं,
शक्ति नहीं ।

भूटे गवाहों की कगड़ें झुल गईं । हाकिम ने पूछा—कहो सेठ,
इतना बड़ा लाज तुमने हमकी स्त्री को दिया था ? नेठ लज्जित था ।
लौकितिया और राजदरद के भय से तथा गर्म में वह धरती में
गड़ा जा रहा था । वह बोलता क्या ? हमके मुख में एक भी शब्द
न निरन्ना । हाकिम ने कहा—तुमने लाज भी चुराया और भूटे
गवाह भी तैयार किये । तुम्हारे ऊपर दहरे स्वरगाय हैं यद्यपि नच
रवाहो, लाज कहाँ है ? नहीं तो गवाहों के घटने कोहो से तुम्हारी
पूजा की जायगं

मार के आगे मृत भागना है यह कोहो है सेठ ने सौरभ
नच दे दिया ।

लाज ने, बाप ने, स्त्री ने, व... सेठ ने, मार के
विषय से मृत भागना है यह कोहो है सेठ ने सौरभ
नच दे दिया ।

हमारे बाप ने, स्त्री ने, व... सेठ ने, मार के

जा रहे हैं ? जीवन की लालसा से ग्रसित होकर मौत का आरिज
करने को क्यों कगन हो रहे हैं ? मित्रो ! आर्यो शोभो, हिर कात है
सब कुछ समझ जानोगे ।

पर श्री तो सब के लिए माता के समान होनी चाहिए। भूत
कवि कहते हैं,—

पर-नों मयि त्रै धरनी जिनैं,
धनि हैं धनि हैं धनि हैं नर नैं ।

जहाँ पात बड़ी नहीं होनी, वहाँ पानी नहीं रुकना और जहाँ
पानी नहीं रुकना वहाँ अच्छाई भरी नहीं हो सकती । मैंने जिनों
के बचन आसरी सुनाकर आदेश की बातें की है, पर पाप के भय
में यह आदेश भी कर्मकाण्डी नहीं हो सकेगा । अतएव बात को
जानो बहिष्कृत त्रिमय आदेश का पानी ठहर सके और आशा
कर्मकाण्डी हो । आसक्त त्रिमयी देवी, समझे-माने के योग्य स्वभाव
रिक्त गिना तो तो माना है मगर धर्म की बातें नहीं ठहर सकती है,
अब धर्मिक गिना दी जाय । हमारे आदेश का पानी गंधर्व के
वाम धर्म का गिना है । अतएव बावको को वाम धर्म की कि
अतएव मित्रो बहिष्कृत त्रिमये आदिमा, माय, प्रकृतये अर्थात् तीनों
समावेश हो । दिव्य पुत्र में मनों में बाध आने दे, पापु रिक्त
एक दल रिक्त है, त्रिमये धर्म को स्थापन नहीं होगा । ऐसा आदेश
में बाधक विरोध हो रहे हैं ? यदि नहीं समझते कि मैं बातें कि
प्रकार करना चाहिये ? वे अपने अपने स्वयं के अनुसार आदेशों में
रिक्त हैं । इस विधि में मनुज लगाव को तो तो इनसे कर्मों
ही जाते हैं ?



कहाँ से कहाँ ?



हे जीवा ! दिमल दिनेश्वर मेदिनी ।

आमराज 'दिमलेश्वर' का यह प्रार्थना है । परमात्मा को मंगली
 होना चाहते हैं । इससे वह हमारे लिए बहुत ही अच्छा होगा । और अन्य
 लोगों को भी बहुत ही अच्छा होगा । और यह सब हमारे लिए ही है ।
 और यह सब हमारे लिए ही है । और यह सब हमारे लिए ही है ।
 और यह सब हमारे लिए ही है । और यह सब हमारे लिए ही है ।
 और यह सब हमारे लिए ही है । और यह सब हमारे लिए ही है ।

हमारे लिए ही है । और यह सब हमारे लिए ही है ।
 और यह सब हमारे लिए ही है । और यह सब हमारे लिए ही है ।
 और यह सब हमारे लिए ही है । और यह सब हमारे लिए ही है ।
 और यह सब हमारे लिए ही है । और यह सब हमारे लिए ही है ।

प्रश्न हो सकता है—अगर वह काल अनन्त था तो उसका अन्त कैसे आ गया? उत्तर यह है कि—एक अनन्त तो ऐसा होता है कि जिसका अन्त कभी आ ही नहीं सकता, दूसरे अनन्त का अन्त तो आ जाता है, लेकिन अन्त कब आया, यह बताना नहीं हो पाता है। एक अनन्त यह भी है, जिसका अन्त आना है फिर भी उसकी प्रचुरता के कारण गिनती नहीं हो सकती। इन दोनों अन्तों को सभी देखते हैं, लेकिन यह नहीं बतलाया जा सकता कि कौन सा सही कहाँ है? उनके आरम्भ और अन्त का क्या मतलब है? इसी प्रकार उस काल का अन्त मानियो ने जो देखा था, वैसा हमकी गणना नहीं हो सकने के कारण उसे अनन्त कहा है।

हे जीव ! हम निगोद के निविद्धता के कारण से अज्ञान का कारण ने न मालूम किम अवस्थिति का अन्त हुआ, उससे तो अनन्त था। निगोद में निहित कर अन्त में आया : अन्तें बने, फिर कुछ भी बृद्धि हुई और नू पदोन्मुख अन्त आया था : अन्तें बने, अन्त का अन्त। अन्तों का अन्त : अन्तें हुए ही हैं, अन्तें हैं न न अन्तों का अन्त। अन्तें हुए हैं अन्तों में अन्तों होने पर अन्तों की ओर विचार है, हम नू किम अन्त में अन्त रहे हैं? अन्तें हुए हैं तो काल ल रहा है? क्या वह मान्यताओं के बिना अन्तें प्रमाणित, निगोद अन्तें बहुत बड़े अन्तों का अन्त अन्तें के अन्त अन्तें हैं? अगर नहीं तो क्या अन्तें वह अन्तें हैं कि नू अन्तें अन्तें अन्तें

अन्तें अन्तें अन्तें का अन्त अन्तें हैं, अन्तें अन्तें का अन्त अन्तें हैं। अन्तों की ओर ध्यान देने से अन्तें अन्तें अन्तें हैं।

मतलब यह है कि आपने अपने दिल के मद्दत में यदि हराम को स्थान न दे रक्खा हो तो फिर किसी क्रिम का भगदा नहीं हो सकता । अतएव आपके दिल से उन हराम को निकालने और इन्हें को स्थान देने के लिए ही हम लोग बार-बार कहते हैं ।

अगर आप रुपये देकर स्टाम्प लाएँ और उन कीरे स्टाम्प पर कोई लड़का खाली लकीरें खींचने लगे, तो क्या आप उसे खींचने दिते ? मित्रो ! त्रिन्दगी स्टाम्प से बहुत अधिक कीमती है । त्रिन्दगी के मफे पर खाली लकीरें खींचकर इसे खराब मत करो । इसका सदुपयोग करो । दुहपयोग मत करो । ऐसा करने से कल्याण होगा ।



अनेकानेक महापुरुष हुए हैं या साहित्य में जिन महापुरुषों का चरित्र विद्वान् किया गया है, उनमें प्रतिफलित होने वाले आत्मा की चरित्रता साधारण नहीं है। आगे किसी भी महापुरुष का चरित्र बड़ा कर दिये आगे जो वसुन्धरा समाधारण उत्पन्नता, कल्याणप्रवर्तन और अनन्तरी भावना मिलेगी।

लेने अनेक महापुरुषों में राम का नाम संसार प्रसिद्ध है। और वेसा मनुष्य होता जिसने 'राम' नाम न सुना हो? अमरत्व का स्थलीय हो जान के बाद, आज भी राम का नाम प्रायःक साधनवादी की शिक्षा और हृदय पर अक्षिप्त है। इनका होने हुए भी राम-चरित्र व मूल्य आदर्श की समझने वाले अधिक नहीं हैं और वसुन्धरा को अर्थ में मूल्य जगत् केन वालों की संख्या में उल्लिखितों पर मिलने योग्य ही होगी। राम का नाम जब लेना एक बात है और राम की समझना दूसरी बात है। बिना ले डीक ही कहा है—

राम राम सब कोइ कहे, टग टाट्ट और और ।

बिना लेने नहीं दास्य मनुष्यगौर ।

राम का नाम अज्ञात प्रवर्त है और और भी प्रवर्त है। अज्ञा, और का प्रवर्तन के लिये और और अज्ञा का प्रवर्तन में साधन का प्रवर्तन

राम राम सब कोइ कहे, टग टाट्ट और और ।

बिना लेने नहीं दास्य मनुष्यगौर ।

राम राम सब कोइ कहे, टग टाट्ट और और ।

बिना लेने नहीं दास्य मनुष्यगौर ।

होते हुए भी रामचन्द्र प्रजा की भलाई करते हैं तो राजा होने का क्या म करोगे ? इसके अतिरिक्त रामचन्द्र की प्रकृति इनकी मौल्य और मधुर थी कि वह सभी को प्रिय लगने में और राजा के रूप में उन्हें देखने की कल्पना से ही प्रजा आनन्दित थी ।

राम के राज्यभिषेक का सम्चार मिलते ही उनके मित्र हर्षि होकर उन्हें बधाई देने गये । राम गम्भीर हो कुछ सोच रहे थे । मित्रगण के हर्ष का पार न था, यहाँ तक कि हर्षानिरेक से उनके मुख में हल्का ही मुस्की निकलने लगे । हर्ष और शोक के आविर्भाव में स्वभावतः कुछ अचानक हो जाता है । राम के मित्रों का भी राजा हर्ष के कारण रुक गया था । वे बधाई देने के लिए बोलने की चेष्टा करते थे किन्तु भी हर्ष के अनिरेक से बोल नहीं पाते थे ।

अपने मित्रों को इस अवस्था में देखकर अनुराध रामचन्द्र की समझ गये । इस समय भी उनकी गम्भीर मुद्रा ठीक तरह दिखाने लगी थी । उन्होंने कहा—आप लोगों के चेहरे से ही यह प्रकट है कि आप हर्षमय हैं और हम हर्ष का कुछ भाग मुझे देने जाते हैं । अब आप हर्ष देने जाते ही हैं ना कि इनका विरक्त्य क्यों ? आप ही जीत जाते हुए हैं ।

रामचन्द्र की बात सुनकर उनके मित्रों ने बोलने की बहुत चेष्टा की, फिर भी उन्हें मायूस हुआ जैसे उनकी जीभ पर रिझने में बाधा लगा दिया है । किन्तु वे रुक भी न सके ।

तब रामचन्द्र ने उन्हें बहुत ही दयालुता से कहा—सम्पत्ति और विधान के समय इस प्रकार हर्ष का विधान करना दुर्दम्य है

मात्र करके संसार में धर्म की स्थापना करना ही मेरे जीवन की एक मात्र साधना है।

इस समय धर्म का नारा हो रहा है और अधर्म फैल रहा है। मुझे अधर्म के स्थान पर धर्म की प्रतिष्ठा करना है। धर्म का बर्यावत करना ही मेरा ध्येय है। क्या तुम लोग नहीं देखते कि संसार कैसा अधर्म व्याप्त हुआ है ? मनुष्य क्या करने के लिए और क्या कर रहे हैं ?

मैं मनुष्यों
इसने

तुलसीदासजी की इन दो चौपाइयों की ही यह व्याख्या है ।

राम कहते हैं—'तुम लोग कहते हो, छोटे को राज्य देने का नियम नहीं है, इसलिए छोटे को राज्य देना अनुचित होगा; लेकिन मैं कहता हूँ—निर्मल सूर्यवश में यही एक अनुचित प्रथा है कि छोटे भाइयों को छोड़कर बड़े को राज्य दिया जाय । मैं इस प्रथा का निन्दक सूर्यवश का कलंक मानता हूँ ।'

गुलिरता में एक कहानी आई है । एक अमीर अपने चापे हाथ की छोटी अंगुली में अंगूठी पहने था । किसी गरीब ने उसके पास जाकर पूछा—'दाढ़िना हाथ बड़ा होता है या बाया ?' अमीर उत्तर दिया—'जो हाथ उठाता काम करता है, इस कारण बड़ी माना जाता है ।' तब गरीब ने कहा—'तो आपने अंगूठी चापे हाथ क्यों पहन रखी है ? दाढ़िने हाथ को क्यों नहीं पहनाई ?' अमीर बोला—'मैंने पहले ही कहा कि जो उठाता काम करे, बड़ी कहा । जो छोटे में काम कराता है, बड़ा कहा नहीं है । मैंने चापे हाथ अंगूठी पहन रखी है । इससे दाढ़िने हाथ का बड़ापन आप प्रकट हो जाता है । छोटे को देना ही तो बड़ापन है । बड़ापन कहा है । मैं दुनिया को दाढ़िने को देने के लिए चापे हाथ अंगूठी पहना है । इससे यह जाहर हो जाता है कि छोटे को भी बड़ा दो, जिससे बड़े के बड़ापन को पहचान लगे ।

गरीब ने कहा—'अमीर मैं पूछा—'बड़ा' वह अंगूठी उगधी को न पहन कर बड़ापन दाढ़िने को देना दे ।'

अमीर ने कहा—'मैंने दाढ़िने हाथ को बड़ापन दे ही है । दाढ़िने को

राज्य अनुचित है। यह अविश्वास का कारण है। सगे भाइयों ने यह भेदभाव क्यों ? क्या दाहिना हाथ अपना है और बायाँ हाथ पराया है ? जिसे इस बात पर विश्वास है कि देने से लक्ष्मी बढ़ती है, वह देना विचार कदापि नहीं करेगा। देना क्या है ?

स्वस्यातिसर्गो दानम् ।

किसी वस्तु पर अपनी मत्ता का उत्सर्ग कर देना ही दान है। दान से लक्ष्मी बढ़ती है, घटती नहीं है।

राज्य प्राप्ति के अवसर पर राम का इस प्रकार पक्षताना भक्त के मन की कुटिलता हरने वाला है। राम ने पक्षता कर भक्त के मन की कुटिलता का दूरण किया है। इस पक्षतावे में सीता की यह बात भी का जाती है—

अमर्तान्धमदग्निमहिमारात्रिराज्यवम् ।

पुष्टर के राज्याने जैसा अज्ञाने वाला राज्य मिलने पर भी पक्षताना भक्तों के मन की कुटिलता हरने के लिए है। इससे उन्हें मरुद्वि मिलने पर अग्निमान न जाने की शिक्षा हो गई है।

राम ने राज्य देने पर भी अग्निमान नहीं किया था, परन्तु अपने मित्रों का अग्निमान हरने के लिए ब्रह्माक्षय दिया था, लेकिन राज्य होने पर अपने कोर नेतर पेरिये। आपकी मरुद्वि राज्य प्राप्त होने से ही का अग्निमान नहीं थागा ? मरुद्वि राज्य मिलने से जिनके हाथ में कादवार जान बढ़ता है वे किनके भक्त हैं ? राम के का राज ब का राज ब ?

रामचंद्र का आदर सामने रखकर परमात्मा से प्रार्थना करो--“हे प्रभो ! मेरे मन की कूटिलता हरो । मेरे अंतःकरण में अभिमान का अंकुर न उगे ।”

मनुष्य मात्र निरभिमान होकर नीचे गिरे हुए लोगों को ऊपर उठाने लगे और दूसरों के हित के लिए अपने स्वार्थ का बलिदान करना सीख लें तो जड़-पट्ट में राम-राज्य हो जाए ।

राज की दृष्टि और वैभव की बोझ ने ही संसार को नरक बना छोड़ा है । जिस दिन सभी लोग म्याद-अम्याद को समझकर म्यादपत्र का अवलंबन करेंगे, अम्याद तो बुर रहेंगे और प्राणीमात्र की अपना बन्धु समझ कर उनके सुख में सुख और दुःख में दुःख अनुभव करने लगेगे, तभी राम की इस वचित्र भूमे पर राम-राज्य की प्राप्ति होगी ।



हिम्मे पढ़ने वाले का बल्बाल हो। शिक्षा के विषय में अध्यापक और विद्यार्थी—दोनों बर्ग जिम्मेवार हैं, किन्तु विद्यार्थियों की अपेक्षा शिक्षकों पर अधिक ज़म्मेदारियत है। जो लोग अपने बच्चों को पढ़ाते हैं, उनकी एक मात्र दली इच्छा होनी है कि बच्चा सुधर जाए। इसी इच्छा से वे बच्चे की अध्यापक के सिपुहें करते हैं। ऐसी दशा में अध्यापकों को अपनी लज्जा या मां में रहने वाले छात्रों के प्रति अपना ज़ल्लेख समझना चाहिए। विद्यार्थी के भविष्य का बहुत ज़रमदार अध्यापक पर ही है। बहुत ब्राह्मणों तो विद्यार्थी की जीवन्मृत्यु के लिए मार्ग खोज बना सकते हैं और यदि चाहें तो विद्या के नाम पर सुसंगत की ऐसी शिक्षा दे सकते हैं जो ज़रम भर निरर्थक ही नही। इन्हींलिए कहा जाता है कि अध्यापकों के ऊपर बहुत बड़ा ज़म्मेदारियत है।

एक/२ माता-पिता का भी बच्चों के सुधार में बड़ा हाथ है, किन्तु अध्यापकों की अपेक्षा कम है। माता-पिता की जिम्मेदारी बचपन तक है। बालक को जिम्मेदारी के अन्तर्गत है। एक शिक्षक बचपन ही से बचता है। अतः ही जिम्मेदारी रहने है कि वह अपनी जिम्मेदारी निभा सके। इससे पता चलता है कि बचपन ही से बालक को जिम्मेदारी देनी है, एक पर बड़ी ज़रूरी जिम्मेदारी रहने है। यह ज़रूरी है कि वह एक बालक को लक्ष्य के दृष्टा बनने के कारिण बन सके।

अतः ही यह कहना है कि बालक को भी तो जिम्मेदारी देनी है। एक बचपन ही से बालक को जिम्मेदारी देनी है। एक बचपन ही से बालक को जिम्मेदारी देनी है। एक बचपन ही से बालक को जिम्मेदारी देनी है।

है और अज्ञान की रक्षा करने वालों का गला काट कर अज्ञान को मगाने वाले में भी शक्ति अपेक्षित है। प्रत्येक अच्छे काम में अगर सामर्थ्य आवश्यक है तो बुरे काम में भी शक्ति चाहिए ही। बिना शक्ति के कोई भुग काम भी नहीं होता। इस प्रकार शक्ति अपने आप में कोई महत्वपूर्ण वस्तु नहीं है, अगर शक्ति की सार्वजनिक प्रयोजन में है। अशक्ति की अपेक्षा शक्ति अच्छी चीज है, अगर शक्ति का सदुपयोग ही दितावर है, इसमें संदेह नहीं।

यदि शिक्षा मनुष्य को सच्चा मनुष्य बनाने के लिए है तो उसे दोनों उत्तरदायित्व निभाने होंगे—एक तो दुई शक्तियों का विकास भी करना होगा और उनके सदुपयोग की ओर भी मनुष्य को मुक्ताना होगा। अज्ञानमय बहून में भोग पड़ती जान को तो स्वीकार करते हैं अगर दूसरी को नहीं। वह शक्ति विकास तो आवश्यक समझते हैं, अगर उनके उपयोग के विषय में अपेक्षा बनाने हैं। इस कारण शिक्षा में जो लाव होने चाहिए, वह नहीं हो रहे हैं और समाज में गरवद्वय मय रही है।

आज्ञात्मक बहून-की वास्तविकताओं सुभी हुई हैं और भोग वशी वास्तविकताओं में जाने बर्बादों बढ़ाकर जारी बनाने की आशा करते हैं। अगर समझदारों को मंदिर वह मय रहना है कि वह बर्बाद रूपमय समझ बनाने के बदले कहीं अधिकपूर्ण को पैदा मही करनी ?

बहुत कम प्रचार होने चाहिए, आर्थिक-सिद्धि का प्राथमिक दृष्टि में क्या महत्ता का बोध आज्ञात्मक बना है, वह कच्चा विषय है। कच्चा म बड़ा समझ बना चाहिए कि शिक्षा नहीं होती चाहिए,

उनका पालन पोषण करके अभ्यासकों को भोग देने हैं। यदि कदापि मात्र नैवार करना कहाया। अब जने पक्का बनाने का ठगरागिब अभ्यासकों पर आना है। वे जमे एक आदर्श व्यवधि बना सकते हैं, यदि वह अच्छे कपड़े की तरह अपने देग और अपनी सम्पत्ति की रक्षा कर सकें। अगर उन्होंने ऐसा नहीं किया वही ज्ञान संसार के लिए अपादराग करने वाले ब्रह्म की भाँति पुरा मिष्ट हो सकता है।

अगर दुःख के साथ वह देखा जाता है कि समाज में अभ्यास के सम्पूर्ण ठगरागिब के अनुसंधान को प्रतिष्ठा नहीं है। जने दूसरे लोग सम्पदा पाने वाले अभ्यसक संस्थाओं के समान ही समझते हैं और भव अभ्यास में भी वही भावना या भाव है कि हम बेगन देने वाले के साथ हैं। आतम अतिक्रम विषय जैसे जैसे आने पड़े गये करने हैं। उन्हें आने विचारों के द्वारा और विचार में कोई समझ नहीं रहता। भूत की छुड़ी हुई और सब ही अभ्यास में कपड़ों के साथ में छुड़ी गई। ऐसा करने व्यवहार करने के अभ्यास, सब विषय नहीं पड़े जा सकते। कदापि वह कदापि पढ़ा पढ़ा का समझ नहीं समझ पाता है। वे लोग अभ्यासों का अनुसंधान करके पढ़ पायता पाते हैं। यदि वह का समझ नहीं समझी। जब अभ्यास वह नहीं सोचते कि इस काल में वह पायको का जीवन समझने किसे भोग लय है, कदापि वह समझ के साथ वह भूत समझ समझा कि वह समझ है। कदापि समझ समझ को वह समझ समझ का समझ समझ नहीं होता कि इस काल में वह समझ समझ के साथ, कदापि, वह समझ को समझ के समझ समझ की समझ। कदापि समझ

को सुधारने के लिए उनमें योग्य संस्कार डालना उनके लिए अनारम्भ नहीं है। किन्तु अभ्यापक स्वयं ही उस ओर ध्यान नहीं देते। अभ्यापक अपने जीवन-निर्वाह के लिए वेतन लेते हैं, यह कोई मुर्खई नहीं है और परिस्थिति देखते हुए आवश्यक भी है, किन्तु हममें अपने आपको तथा वेतन देने वालों से उनके प्रति हीनता का—गुलामी का—जो भाव आगया है, यह एक बहुत बड़ी मुर्खई है।

प्राचीन-काल में आजकल की भांति क्रय-विक्रय नहीं होता था। गुरुजनों अपने शिष्यों को स्वारतापूर्वक विद्यादान देते थे और शिष्यगण भट्ठापूर्वक उसे ग्रहण करते थे। प्राचीन-काल का इतिहास देखने पर विद्या के लेन-देन का क्रम और ही प्रकार का प्रतीत होता है।

भगवान् महावीर भी अभ्यापक के पास विद्या पढ़ने में गये थे। 'यद्यपि तीर्थङ्करों को जन्म से ही तीन ज्ञान होते हैं और वे गर्भावस्था से ही संसार को जानने देखने लगते हैं, माँ के पेट में ही सब विद्याएँ लेकर आपन्न होते हैं, फिर भी पिता ने अपना कर्त्तव्य समझ कर उन्हें पण्डित के पास पढ़ने के लिए बिठलाया। पिता ने बड़ी धूमधाम के साथ उन्हें पण्डित के घर में भेजा। भगवान् जन्म-ज्वाल ज्ञानी थे, किन्तु उन्होंने पढ़ने जाने से इन्कार करके माता-पिता का अभिनय नहीं किया। वे प्रसन्नतापूर्वक चले गये। पढ़ाई का यह कायदा है कि गुरु ऊँचा बैठता और शिष्य नीचे। भगवान् इन्द्र द्वारा पूजित थे, परन्तु अभ्यापक के सम्मुख नीचे बैठने में उन्हें कुछ भी आपत्ति नहीं हुई। अपने माता पिता को सन्तुष्ट करने के लिए वह सप्रतापूर्वक अध्ययन करने लगे। यहाँ यह स्मरण रखना चाहिए कि विनय करने में बढ़पन घटना नहीं है, बल्कि बढ़ता है।

थे, तथापि उन्होंने अपने गुरु का सम्मान किया। उन्होंने अपने अध्यापक से यह न कहा कि मैं तुमसे अधिक ज्ञानी हूँ। ऐसे विनीत विद्यार्थी और कर्तव्यनिष्ठ अध्यापक हों तो किस बात की कमी रह जाय ? आज की दशा तो यह है कि स्कूल या पाठशाला छोड़ने के बाद फिर कभी गुरु का समाचार पूछने की आवश्यकता नहीं मालूम होती ! ये मरें या जीयें, छात्रों को उनसे कोई मतलब नहीं। इस भावना के परिणाम-स्वरूप विद्यार्थियों की भी कुछ कम दुर्दशा नहीं है। पढ़कर निकलते हैं उन्हें पेट भरने की और नौकरी पाने की चिन्ता घेर लेती है।

जो विद्या बेगार के रूप में पकी और पकाई जाती है, वह शुक्लामी नहीं तो क्या स्वाधीनता सिखलायगी ?

शिक्षा के संबंध में प्राचीन काल का एक उदाहरण और लीजिए। श्रीकृष्णजी इतिहास में प्रसिद्ध महापुरुषों में से एक हैं। वे बहुत बड़े राजा के पुत्र थे। महापुरुष होने के कारण उनमें बहुत अधिक ममका थी। फिर भी माता-पिता का आग्रह मानकर वह सान्दीर्षान्त श्रावण व्रत पढ़ने गये। इन्हीं श्रावण के पास सुशमा नामक एक गरीब ब्राह्मण विद्यार्थी भी पढ़ता था। कृष्णजी का उमर त्रेम हो गया। दोनों गाढ़े मित्र बनकर रहने लगे।

सयोगवत एक दिन गुरु कहीं चले गये और घर में जलाने की लकड़ी नहीं थी। लकड़ी के अभाव में गुरुजी को जल नहीं बना सकता था। यह देखकर कृष्णजी अपने मित्र सुशमा को साथ लेकर लकड़ी लाने के उद्देश्य से जंगल का ओर चले गये। दोनों

‘जन्हें देखकर आचार्य ने कहा—‘बन्स ! मैं तुम लोगों को क्या पढ़ाऊँ ? विद्या के अध्ययन से जो गुण उत्पन्न होने चाहिये, वह तो तुम लोगों में मौजूद ही हैं। देखो न, बेचारा सुदामा इस विपत्ति से कितना घबरा गया है। तुम (कृष्ण) महापुरुष हो, इस कारण घबराये नहीं और सरा की भौंछि प्रसन्न होस्व पड़ते हो।’ इतना कह कर आचार्य जन्हें घर ले गये।

विद्यार्थी की अपने गुरु के प्रति ऐसी भट्ठा-भक्ति होनी चाहिये, उसका आदर्श हम कथा में बतलाया गया है। साथ ही यह भी प्रकट किया गया है कि अध्यापकों में और विद्यार्थियों में यह बात कर्शों !

पूर्व काल में शिक्षा की क्या दशा थी, यह देखने के लिए राज्ञों की और ग्यान दीक्षिण । ठाण्णिगत्र (३ रे ठाणे) में भगवान् महावीर कहते हैं:—

सउ दुपपट्टियारा वज्जता, समण्डळो संजहा-अम्मा पि जणो ।

भगवान् ने अपने शिष्यों से कहा—शिष्यों ! तीन के श्रृण से मनुष्य समता पूर्णक उश्रण नहीं हो सकना ।

शिष्यों ने कहा—भगवान् ! अनुमद करके बतलाइए—बह तीन कौन कौन हैं ?

भगवान् बोले—माता पिता, जिसकी सहायता से बड़े बड़े स्वामी और धर्माचार्य । इन तीन के श्रृण से मुक्त होना अत्यन्त कठिन है ।

उन्हें देखकर आचार्य ने कहा—‘वत्स ! मैं तुम लोगों को क्या पढ़ाऊँ ? विद्या के अध्ययन से जो गुण उत्पन्न होने चाहिए, वह तो तुम लोगों में मौजूद ही हैं। देखो न, बेचारा सुरामा इस विपत्ति से कितना परेशान गया है। तुम (कृष्ण) महापुरुष हो, इस कारण पचराखे नहीं और मर्रा की नाँति प्रसन्न होख पड़ते हो।’ इतना कह कर आचार्य उन्हें पर ले गये।

विद्यार्थी की अपने गुरु के प्रति कैसी भट्ठा-भक्ति होनी चाहिए, उसका आदर्श इस कथा में बतलाया गया है। साथ ही यह भी प्रकट किया गया है कि अभ्यापकों में और विद्यार्थियों में यह भाव क्यों !

पूर्व काल में शिक्षा की क्या दशा थी, यह देखने के लिए शास्त्रों की ओर ध्यान दीजिए। ठाण्णंगत्र (३ रे ठाण्णे) में भगवान् महावीर कहते हैं:—

सउ दुपपट्टियारा पसला, समणाइत्तो तंजहा-अम्मा पि जणो ।

भगवान् ने अपने शिष्यों से कहा—शिष्यो ! तीन के श्रेण से मनुष्य समस्तता पूर्वक उद्धार नहीं हो सकता।

शिष्यों ने कहा—भगवन ! अनुवाद करके बतलाइए—वह तीन कौन कौन हैं ?

भगवान् बोले—माता पिता, जिसकी सहायता से बड़े बड़े स्वामी और उर्माचार्य। इन तीन के श्रेण से मुक्त होना अत्यन्त कठिन है।

आसन पर न बैठे । ओ वस्त्र उन्हें सुरा मालूम हो, वह न पहने और न उनकी इच्छा के विरुद्ध भोजन करे । इस प्रकार संप तरह की सेवायें करता हुआ पुत्र अपने को अन्य माने ।

गौतम स्वामी भगवान् से पूछते हैं—प्रभो ! क्या इतनी सेवा करने से पुत्र, माता पिता के श्रेण से हुटकारा या आयगा ?

भगवान् ने उत्तर दिया—नहीं, गौतम ! ऐसा नहीं हो सकता । इतना करके भी माता-पिता के श्रेण से मुक्ति नहीं मिल सकती ।

इस जगह आश्रकल एक नया सर्क बताया जाता है । कुछ लोग कहते हैं—जब इतनी सेवा करने पर भी माता-पिता का श्रेण नहीं चुक सकता, तो स्पष्ट है कि उनकी सेवा करना पाप है ।

जिस शास्त्र से इस प्रकार की शिक्षा दी जाती है, उसे लोग शास्त्र नहीं रहने देते, बल्कि उसे शास्त्र बना डालते हैं । धर्म के पवित्र नाम पर इस प्रकार अनात्म मिलाने वाले संसार का क्या कहपाण कर सकते हैं ? ऐसा कहने वाले लोग संसार को मुत्तावे में डालते हैं, लोगों को कर्तव्यभ्रष्ट बनाते हैं और संसार की घोर हानि करते हैं ।

आश्रकल कितने शिक्षक मिलेंगे ओ अपने विद्यार्थियों से पूछते हो कि—तुम क्या खाते हो ? क्या पीते हो ? माता-पिता के प्रति विनयपूर्ण व्यवहार करने हो या नहीं ? उनकी सेवा करते हो या नहीं ? कठिनाई तो यह है कि आधुनिक शिक्षा में मनाचार को जैसा कोई स्थान ही नहीं दिया जाता । समय पर अध्यापक और विद्यार्थी आये । किताबें पढ़ी-पढ़ाई और समय पूरा होने पर अपने-अपने

समय बालक का पात्रण-व्योपण करने हैं। येमे निर्धार्य-भाष से उपकार करने वाले उपकारियों का उपकार स्मरण कराने के लिये हमें सुनाने वाली शिक्षा, शिक्षा है या अशिक्षा ? 'अशिक्षा' !

माता-पिता के अनिर्दिष्ट दूसरा उपकारी तब है जो गीरी के समय मदायना करे ।

तीसरे उपकारी बड़ गुरु हैं, जिन्होंने धर्म की समुचित शिक्षा दी है। आत्मा को काम, क्रोध, मद, मोह, मात्सर्य आदि विकारों से रहित निर्दोष और निर्बिचार बनाने का उपदेश दिया है। जिन्होंने आत्मा-अनात्मा का विवेक भिक्षा-वा है और लोभ पर-लोभ आदि का ज्ञान कराया है।

इन तीन प्रकार के उपकार-कर्त्ताओं ने अनुपम मरतना के उपकार नहीं हो सकता। इनका उपकार सदाय है।

अब यह प्रश्न उठ सकता है कि अब इन उपकारियों की बड़ी से बड़ी सेवा उन्हें भी इस महान् उपकार नहीं हो सकते और उपकार होता कबित है, या आन्तरिक क्या करना चाहिए ? इस दुष्प्रश्न से, बीज-भी बिना इस उपकार हो सकते हैं ?

इस प्रश्न का जवाब देने में पहले कुछ सावधान बनने पर प्रकाश होना उचित है। कुछ लोग यहाँ प्रश्न का भाव गूँथने की कोशिश प्रयत्न करते हैं। बड़ काग आने लक्ष क समर्थन से कह देते हैं कि प्रश्न यह है कि एक एक माता-पिता है। जैसे ही बड़ा बड़ा कि मरतना को बड़ा और अनात्मा केना। अनात्मा माता-पिता की सेवा के 'बड़ा' लक्ष को विचार के एक एक उपकार प्रश्न, यदि

अनुभव करने लगेंगी। इस समय आपको सचा उन पर न
चलेगी। ऐसा होने में जो खतरा है, उसे आप लोग पहचानें ही। अनु-
भव कर सकें तो अच्छा ही है।

जो लोग यह कहते हैं कि पद्म प्राचीन काल से—बड़े-बूढ़ों के
कमाने से चला आया है, उन्हें सोचना चाहिए कि लोग अगर, बड़े-
बूढ़ों के बनाये हुए कायदे से ही चलते तो आज इतना करने का
आवश्यकता न पड़ती। बड़े-बूढ़ों ने जिस विचारशीलता से पद्म
प्रथा चलाई थी, वह विचारशीलता आज होती तो पद्म उठाने
एक भी क्षण की बेरी न लगती।

यहाँ यह स्मरण रखना चाहिए कि पद्म उठाने का अर्थ
सत्ता उठाकर एक प्रकार की निर्लज्जा उत्पन्न कर देना नहीं है।
पद्म उठाने पर स्त्रियों को वर्तमान उपयोग में आने वाले निर्लज्जा
पूर्ण वारीक बसों का, जिनमें आज उनके सिर का एक-एक बाल
दिखाई पड़ता है, त्याग करना पड़ेगा। पद्म उठाने से पद्म का
बहुत-सी पीछे अपने आप समाप्त हो जायेगी। क्या इतने वारीक
बस प्राचीन काल की बहिन पहनती थीं ?

अगर पद्म एक दम बिलकुल नहीं छूट सकता तो कम से कम
उसका रूपांतर तो अवश्य ही करने योग्य है। दिल्ली तथा कुछ प्रांत
में भी पद्म है, मगर मारवाड़ जैसा पद्म नहीं है। स्त्रियों को बन्धन
कर रखने से सत्ता की रक्षा नहीं हो सकती, यह बात आपको
अभी भाँति समझ लेनी चाहिए।

मैं किसी पर सक्तो नहीं करता। मेरा कर्तव्य आपके कल्याण

यह मकान तुम्हारा है। तुम हमने किसी को आने दो या न आने दो। मैं इस मामले में हस्तक्षेप नहीं कर सकता। अगर मुझे मना कर दो तो मैं भी अभी बाहर निकलने के लिए बाध्य हूँ। ऐसी दशा में मैं तुम्हारे बुलाने, बिठाने या न बुलाने के कार्य में क्या दखल दे सकता हूँ ? यह मेरा घर नहीं है कि लोगों को बुला-बुलाकर बिठाऊँ रही उपदेश देने की बात, सो मंगी आपणा तो उसे और आपणा तो हमें समान रूप से मैं उपदेश दूँगा। अगर मैं उपदेश न सुनाऊँ तो फिर साधु ही कैसा !

लोग कहते होंगे - अब भगियों को उपदेश सुनाते हो तो उनके गोबरी करने (आहार लेने) क्यों नहीं जाते ? मैं कहता हूँ-अगर तुम लोगों का उन के साथ ऐसा व्यवहार हो जाय-आपस में मोड़न-ठपड़हार आरम्भ हो जाय, तो मुझे कुछ भी आपत्ति न होगी। उस समय मैं भी भगियों के घर से गोबरी जाने लगूँगा।

मित्र ! साधु लोग भगियों से परदेष्ट करे या न करे, अगर सचार्थ यह है कि तुम्हीं लोग उनसे परदेष्ट नहीं करते। अस्पताल में मंगी कार्य करते हैं और तुम वहाँ की दवा पीने हो। ऐसा कौन है जिसने आपणाज की दवा का भक्षण न दिया हो ? रेल में मंगी सफर करता है और उभी में तुम बैठते हो। क्या इमी को परदेष्ट करना कहते हैं। साधु तो इन दोनों चीजों को काम में नहीं लेते। अब बताओ मंगी से तुम क्या परदेष्ट करने हो या हम ? हम लोग महापुत्र के व्रत में बन्धे होने के कारण गरव गमने जाते हैं इस कारण तुम सचो मो कहो, किन्तु मुझ मंगी से परदेष्ट न करना और हमारे उपदेश दे देने मात्र में धर्म पर झट्ट थापा गमकना सरासर अन्याय है।

आपके समय पर कामे नहीं आती, तो कब काम आवेगी ?

माता-पिता के साथ आचार्य को भी देव मानने की शिक्षा दी जाती थी । क्या मैं हूँ—

गुरु गोविंद दोनों सदे, किमके लागूं पाय ।

बलिहारो गुरु देव की, गोविंद दिया बनाय ।।

अगर धर्म और नीति का उपदेश देने वाले न हों तो मानव-समाज की कैसी दुर्दशा हो ? मानव-जीवन कितना भयंकर बन जाय ?

अगर उपनिषद् का जो उल्लेख किया है, उसमें आचार्य ने शिष्य को उपदेश देते हुए, यह भी बतलाया है कि हमने जिन कार्यों का आचरण किया है, वही कार्य तुम भी करना, उसमें बिरुद्ध मत करना । यह कथन स्पष्ट प्रकट करता है कि उस समय के आचार्य (अध्यापक) छात्रों के समक्ष कितना संयममय व्यवहार करते होंगे ! उनका जीवन कैसा नीतिमय होगा ? तभी तो वह स्पष्ट शब्दों में शिष्य को अपना अनुकरण करने का आदेश देते हैं ? क्या आधुनिक शिक्षक भी प्राभाणिकता के साथ ऐसा आदेश दे सकते हैं । उन्हें अपने ऊपर ऐसा सुट्टा विश्वास है ? आधुनिक अध्यापक कहता है—

Do as I say, dont do as I do.

अर्थात्—मैं जैसा कहता हूँ, वैसा करो । मैं जैसा करता हूँ वैसा मत करो ।

दोनों में कितना अन्तर है एक सबल हृदय की भाषा है, दूसरी निर्बल हृदय की । एक में उच्च चार्मित्र को हड़ना टपक रहा है, दूसरे में आनन्द दागता प्रकट हो रही है । यानो सराधार कहने के लिए



